दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

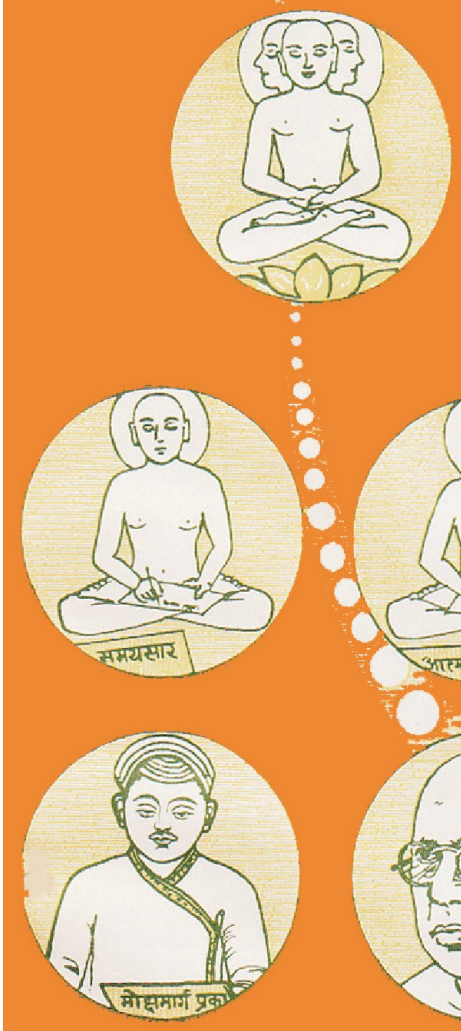

क्रमबद्ध तो बापू जैनदर्शन का मस्तक है, जैनदर्शन की आँख है, वस्तुस्वभाव की मर्यादा है। इसे समझना और निस्संदेह होना बड़ी अलौकिक बात है।

— पूज्य स्वामीजी

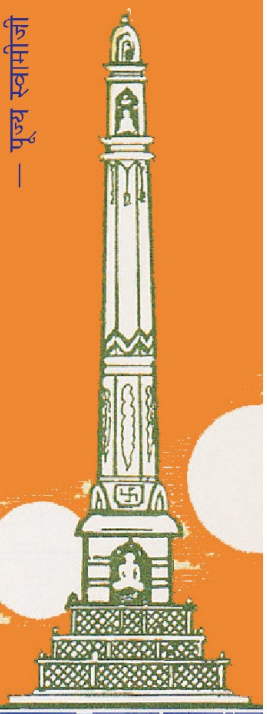

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३५ : अंक ८ [४१६] फरवरी, १९८०

आत्मधर्म [४१६]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ सम्यग्ज्ञान बिना.....
२ धन्य रत्नकूख-धारिणी माता
३ क्रमबद्धपर्याय : कुछ प्रश्नोत्तर
४ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है
[समयसार प्रवचन]
५ जैसे सिद्ध वैसे ही संसारी
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध-संपादक की कलम से

धर्म का मूल सर्वज्ञ है, क्रमबद्धपर्याय का निर्णय हुए बिना सर्वज्ञ का निर्णय नहीं हो सकता। धर्म का आरंभ ही क्रमबद्ध के निर्णय से होता है। इसका निर्णय करना बहुत जरूरी है ?

—पूज्य कानजीस्वामी

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१६] अंक : ८

सम्यग्ज्ञान बिना, तेरा जनम अकारथ जाय।टेक॥

अपने सुख में मगन रहत नहिं, पर की लेत बलाय।
सीख सुगुरु की एक न मानै, भव-भव में दुःख पाय॥
सम्यग्ज्ञान बिना० ॥१॥

ज्यों कपि आप काठ लीला करि, प्रान तजै बिललाय।
ज्यों निज मुख करि जाल मकरिया, आप मरै उलझाय॥
सम्यग्ज्ञान बिना० ॥२॥

कठिन कमायो सब धन ज्वारी, छिन में देत गमाय।
जैसे रतन पाय के भोंदू, बिलखे आप गमाय।
सम्यग्ज्ञान बिना० ॥३॥

देव-शास्त्र-गुरु को निहचै करि, मिथ्यामत मति ध्याय।
सुरपति बांछा राखत याकी, ऐसी नर परजाय॥
सम्यग्ज्ञान बिना० ॥४॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

धन्य रत्नकूख-धारिणी माता

स्त्री का शरीर और पुरुष का शरीर तो पुद्गल की रचना है; किंतु भीतर आत्मा सबका एकसा है। स्त्री का आत्मा भी अपने आत्मा का सुधार कर सकता है। पूर्वकाल में आत्मा का भान कर-करके अनेक स्त्रियाँ एकावतारी हो गईं हैं और वर्तमान में भी ऐसी स्त्रियाँ हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव—जो कि मनुष्य होकर सीधे मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं—उन्हें चौथी भूमिका है। स्त्रियाँ अपने आत्मा के आनंद का स्वसंवेदन करके देवों से भी उच्च भूमिका प्रगट कर सकती हैं। 'हम तो स्त्री हैं, इसलिए हमसे क्या धर्म हो सकता है'—ऐसा नहीं मानना चाहिए। स्त्रियों का आत्मा भी पाँचवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है और देवों द्वारा भी उसकी पूजा होती है। पूर्वकाल में ब्राह्मी, सुंदरी, चंदनबाला, सीताजी आदि अनेक महान धर्मात्मा स्त्रियाँ हो चुकी हैं।

बहनों को सर्व प्रथम ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए—क्योंकि शील स्त्रियों का आभूषण है। ब्रह्मचर्य के साथ-साथ स्वभाव दृष्टि का लक्ष्य रखना चाहिए। शरीर तो स्त्री या पुरुष किसी का भी हो, किंतु चैतन्यमूर्ति आत्मा उससे भिन्न है; उसका भान करना चाहिये। जिसप्रकार सोने के अनेक सिक्कों पर हाथी, घोड़ा, मनुष्य आदि के चित्रवाले विभिन्न प्रकार के कपड़े लिपटे हों तो उससे कहीं भीतर का सिक्का नहीं बदल जाता, सिक्के तो समान ही हैं; उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा चैतन्यमूर्ति सोने के सिक्के जैसा है-उस पर कोई स्त्री का शरीर है, कोई पुरुष का, कोई हाथी का—किंतु भिन्न-भिन्न शरीर होने पर भी आत्मा तो उनसे भिन्न चैतन्यमूर्ति है। इसलिए 'मैं स्त्री', 'मैं पुरुष'—ऐसी बुद्धि छोड़कर—'मैं तो अविनाशी-ज्ञानमूर्ति आत्मा हूँ'—ऐसा समझना चाहिए।

स्त्री के गर्भ में तो त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर और चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुष आते हैं। तीर्थंकर भगवान जब गर्भ में आते हैं, उस समय इंद्र आकर माता का बहुमान करते हैं कि अहो रत्नकूख-धारिणी माता! आप तो जगत की माता हैं, जगतपूज्य हैं, त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर की जन्मदात्री हैं; धन्य है आपकी कुक्षि को। तीर्थंकर भगवान को जन्म देनेवाली माता भी अल्प काल में (तीसरे भव में) मोक्ष प्राप्त करती है।

— पूज्य कानजीस्वामी

—आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७७, जनवरी १९६०, पृष्ठ ४०७

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | कुछ प्रश्नोत्तर

[गतांक से आगे]

(१५) प्रश्न :- शास्त्रों में एक अकालनय भी तो आता है ? कालनय से कार्य स्वकाल में होता है और अकालनय से अकाल में भी हो जाता है—ऐसा मानें तो क्या आपत्ति है ?

उत्तर :- अकालनय का अर्थ यह नहीं कि कार्य स्वसमय में न होकर असमय में हो जाता है। कार्य तो पाँचों समवायों के मिलने पर ही होता है, पर जब एक कारण को मुख्य करके कथन होता है तब अन्य कारण गौण रहते हैं, उनका अभाव नहीं होता।

जैसे - निसर्गज सम्यग्दर्शन भी देशनालब्धि बिना नहीं होता और अधिगमज सम्यग्दर्शन भी स्वभाव के आश्रय से ही होता है, फिर भी जिसमें उपदेश की मुख्यता होती है, उसे अधिगमज और जिसमें उपदेश का प्रसंग प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता, उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

उसीप्रकार जिस कार्य की उत्पत्ति में काल को छोड़कर पुरुषार्थादि अन्य समवाय प्रमुख दिखाई देते हैं, उसे अकालनय का विषय कहते हैं तथा जिसमें काल की प्रमुखता दिखाई देती हे, उसे कालनय का विषय कहा जाता है। इसी को इसप्रकार व्यक्त किया जाता है कि कालनय से स्वकाल में कार्य होता है और अकालनय से अकाल में।

इस कथन का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि कार्य समय के पहले हो गया।

(१६) प्रश्न :- प्रवचनसार में जहाँ कालनय और अकालनय का कथन है, वहाँ तो आम का उदाहरण देकर साफ-साफ लिखा है :-

"कालनय से आत्मद्रव्य की सिद्धि समय पर आधार रखती है, गर्मी के दिनों के अनुसार पकनेवाले आम की भाँति और अकालनय से आत्मद्रव्य की सिद्धि समय पर आधार नहीं रखती है, कृत्रिम गर्मी से पकाये गए आम्रफल की भाँति।"[१]

---

१. कालनयेन निदाधदिवसानुसारिपच्यमानसहकारफलवत्समयायत्तसिद्धिः।
अकालनयेन कृत्रिमोष्मपाच्यमानसहकारफलवत्समयानायत्तसिद्धिः॥

— प्रवचनसार, परिशिष्ट, पृष्ठ ५२७-२८

उत्तर - लिखा तो साफ-साफ ही है, पर उसका अर्थ क्या है ? यह भी विचार किया या नहीं ? कृत्रिम गर्मी से पकाया गया आम समय के पहले पक गया—यह बात कहाँ से आयी ? क्या तुम्हें यह पता था कि वह कब पकनेवाला था ? हो सकता है कि उसके पकने का काल वही हो, जबकि वह पका है; और उसके पकने का निमित्त भी कृत्रिम गर्मी ही हो। इसकी जानकारी बिना कि उसे कब और कैसे पकना है; आप कैसे कह सकते हैं कि वह समय के पूर्व पक गया है ?

प्रत्येक कार्य के होने का काल ही नहीं, निमित्तादि सभी समवाय निश्चित हैं, और सबके मिलने पर ही कार्य होता है। तथा जब कार्य होना होता है या जो कार्य होना होता है, तब वे सभी कारण (समवाय) मिलते ही मिलते हैं। ऐसा नहीं होता कि कभी कोई मिले और कभी कोई। सभी के एक साथ मिलने के कारण ही उन्हें समवाय कहा जाता है।

डाल पर लगे आम के पकने में कृत्रिम गर्मी आदि देने का पुरुष का प्रयत्नादि नहीं दिखाई दिया, अत: यद्यपि उसे कालनय को मुख्य करके काललब्धि आने पर स्वयं पका कहा गया; तथापि उसमें ऋतुकृत गर्मी का निमित्त भी था ही। पाल में पकाये गये आम में कृत्रिम गर्मी दिये जाने रूप पुरुष का प्रयत्न देखा गया, अत: काल को गौण कर अन्य समवाय जैसे पुरुष का प्रयत्नरूप पुरुषार्थ, कृत्रिम गर्मी का निमित्त आदि एकाधिक समवाय की मुख्यता से उसे अकालनय की अपेक्षा अकाल अर्थात् काल से भिन्न अन्य कारणों से पका कहा गया।

यहाँ अकाल का अर्थ असमय या समय के पूर्व नहीं है, अपितु काललब्धि के अतिरिक्त अन्य पुरुषार्थादि समवायों का समुदाय है। काल का अर्थ भी समय मात्र नहीं है, अपितु काललब्धि नामक एक समवाय है। काल को छोड़कर शेष चार समवायों को एक नाम से कहना था तो अकाल के सिवाय और क्या कहा जा सकता था ?

जैसे—जीव से भिन्न पाँच द्रव्यों को अजीव कहा जाता है; उसीप्रकार यहाँ काल (काललब्धि) से भिन्न चार समवायों को अकाल कहा गया है। अत: 'कालनय से' का अर्थ है—काललब्धि की अपेक्षा कथन करने पर और 'अकालनय से' का अर्थ है—काललब्धि को छोड़कर अन्य पुरुषार्थादि समवायों की अपेक्षा कथन करने पर।

बात थोड़ी सूक्ष्म है, पर समझनेयोग्य है। इसे समझे बिना इसके रहस्य को समझ पाना संभव नहीं है। सूक्ष्म अवश्य है, पर समझ में न आवे—ऐसी नहीं। अत: यदि उपयोग को सूक्ष्म कर श्रद्धापूर्वक समझने का प्रयत्न किया जाए, तो समझ में आ सकती है।

कालनय और अकालनय का 'क्रमबद्धपर्याय' से कोई विरोध नहीं है, अपितु ये नय क्रमबद्धपर्याय के साधक ही हैं।

इस संदर्भ में 'जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा' का निम्नलिखित कथन भी दृष्टव्य है:—

''विचार कर देखा जाये तो कालनय में काल की विवक्षा है और अकालनय में काल को गौणकर अन्य हेतुओं की विवक्षा है।

जहाँ अन्य हेतुओं को गौणकर काल की प्रधानता से कार्य को दृष्टिपथ में लिया जाता है, वहाँ वह कालनय का विषय होता है और जहाँ काल को गौणकर अन्य विवक्षा या प्रयोग से प्राप्त हेतुओं की प्रधानता से कार्य को दृष्टिपथ में लिया जाता है, वहाँ वह अकालनय का विषय होता है।

इसप्रकार एक ही कार्य कालनय का भी विषय है और अकालनय का भी। यदि ऐसा न माना जाये तो इन्हें नय वचन कहना संगत न होगा।

स्पष्ट है कि आचार्य अमृतचंद्र ने उक्त कथन से कोई पर्याय क्रमनियत होती है और कोई पर्याय क्रम-अनियत होती है—यह त्रिकाल में सिद्ध नहीं होता। प्रत्युत इससे यही सिद्ध होता है कि सभी कार्य क्रमनियत होकर भी वे विवक्षाभेद से काल और अकाल—इन दोनों नयों के विषय हैं।''[१]

(१७) प्रश्न :- इसप्रकार के प्रयोग लोक में तो प्रचलित नहीं हैं ?

उत्तर :- क्यों नहीं हैं ? काल के अतिरिक्त अन्य समवाय को अकाल कहने जैसे प्रयोग जिनवाणी में तो मिलते ही हैं, जैसा कि जीव-अजीव वाले उदाहरण से स्पष्ट है, लोक में भी ऐसे प्रयोग प्रचलित हैं। 'अजैन' शब्द भी हम जैन धर्मावलंबियों को छोड़कर अन्य धर्म वालों के लिये प्रयोग करते ही हैं। अजैन में हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी आ जाते हैं। जब हम यह कहते हैं कि वह अजैन है तो उसका अर्थ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि कुछ भी हो सकता है।

जब हम यह कहेंगे कि यह काम अजैनों के सहयोग से संपन्न हुआ तो हमारे आशय में जैनों को छोड़कर अन्य अनेक संप्रदाय वाले ही अपेक्षित होते हैं। जब हमें इसमें कहीं कोई शंका नहीं होती तब अकाल का अर्थ काल के अतिरिक्त बाकी समवाय करने पर भी आपत्ति क्यों ?

अकाल का यह अर्थ आज तक हमारे ध्यान में नहीं आया तो इसका अर्थ यह तो नहीं कि उसका यह अर्थ अनुचित है। हमारे ध्यान में तो बहुत सी बातें नहीं हैं, तो क्या वे मात्र

१. जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा, पुस्तक १, पृष्ठ ३५१-५२

इसलिए गलत हैं कि हमारे ज्ञान में नहीं हैं। वस्तु की व्यवस्था क्या आपके तुच्छ क्षयोपशम ज्ञान के आधार पर संचालित हैं ?

क्या यह बात विचारणीय नहीं है ? यदि है, तो फिर एक बार गंभीरता से विचार कीजिए। विचार करने पर सब-कुछ स्पष्ट हो जावेगा।

(१८) प्रश्न :- सभी-कुछ निश्चित है, उसमें कहीं भी कोई फेरफार नहीं किया जा सकता—ऐसा मान लेने पर समागत या संभावित विपत्ति का पता चलते ही समस्त जगत में भय का वातावरण फैल जायेगा; क्योंकि 'सभी-कुछ निश्चित' के अनुसार उसे रोकने का प्रयत्न संभव नहीं है।

यद्यपि 'सब-कुछ निश्चित' नहीं मानने पर भले ही हमारा किया गया कोई प्रयत्न सफल न हो तथापि सफलता की संभवना से आशा तो बनी रहती है, निराशा का वातावरण तो नहीं बन पाता।

कहावत है कि 'आशा से आसमान लगा है'। तात्पर्य यह है कि सारा संसार आशा से ही चल रहा है; यदि आशा न रहे तो संसार में रहना भी दूभर हो जायेगा और कार्य की सफलता के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों के प्रति उत्साह भी नहीं रहेगा।

एक चिड़िया एक-एक तिनका जोड़कर अथक् परिश्रम करके एक घोंसला बनाती है और उसके नष्ट हो जाने पर या नष्ट कर दिये जाने पर फिर उसी प्रयत्न में जुट जाती है। इसका एकमात्र आधार आशा ही तो रहती है, निराश व्यक्ति तो जीवन में कुछ भी नहीं कर सकता; क्योंकि उसका तो मनोबल ही टूट जाता है।

मनोबल टूटा, फिर तो सब-कुछ समाप्त ही समझो; क्योंकि कहा है न कि 'मन के हारे हार है और मन के जीते जीत।'

इसलिए चाहे पर्यायें क्रमबद्ध ही क्यों न होती हों; फिर भी निराशा का वातावरण न बने एवं हमारे हृदयों में आशा का संचार बना रहे—इसके लिये 'क्रमबद्धपर्याय' का सिद्धांत स्वीकार न करना ही श्रेयस्कर है ?

उत्तर :- वस्तुस्वरूप की सच्ची समझ से भय का वातावरण कैसे बन सकता है ? भय का वातावरण तो अज्ञान और कषाय से बनता है; भय स्वयं एक कषाय है, पच्चीस कषायों में उसका भी नाम आता है।

आध्यात्मिक कवि बुधजनजी तो कहते हैं :—

हमकौं कछु भय ना रे, जान लियो संसार।
जाकरि जैसे जाहि समय में, जो होतब जा द्वार॥
सो बनि है टरिहै कछु नाहीं, करि लीनों निरधार॥३॥

यहाँ पर बुधजनजी अपनी निर्भयता का आधार तो 'क्रमबद्धपर्याय' को बता रहे हैं। वे स्पष्ट कह रहे हैं कि हमें कोई भय नहीं रहा है; क्योंकि हमने संसार की सही स्थिति को जान लिया है।

वह सही स्थिति क्या है, जिसे जानकर बुधजनजी निर्भय हो गये हैं।

यही कि जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस समय में, जिसके द्वारा, जैसी होनी है; उसी द्रव्य की, वही पर्याय, उसी समय में, उसी के द्वारा वैसी ही होगी। उसमें कोई फेर-फार संभव नहीं है, उसमें एक समय भी आगे-पीछे नहीं हो सकता है-यह निरधार (पक्का निर्णय) उन्होंने कर लिया है और इसी के आधार पर वे निर्भय हो गये हैं।

वे सत्य के आधार पर निर्भय हुए हैं; इस कल्पना के आधार पर नहीं कि प्रयत्न करके देखो शायद कुछ फेरफार हो जाये। वे कल्पना-लोक में विचरण करनेवाले सामान्यजन नहीं थे, वे तो वस्तु का सत्यस्वरूप समझकर निर्भय होनेवाले ज्ञानी आत्मा थे। और वस्तु स्थिति भी यही है कि निर्भयता सत्य के आधार पर आती है, कल्पना के आधार पर नहीं।

मान लो कि ज्ञानी और अज्ञानी कहीं एक साथ बैठे हैं। सामने खूंखार नरभक्षी शेर आ गया। अब न तो भागने का ही अवसर रहा और न कोई अन्य उपाय ही उससे बचने का दिखाई देता है। इस अवसर पर ज्ञानी तो उक्त सिद्धांत के आधार पर धैर्य धारण कर निर्भय रहेगा और अज्ञानी भयाक्रांत हो जावेगा, यद्वा-तद्वा कुछ भी करने का असफल प्रयत्न करेगा; पर उससे कुछ होनेवाला तो है नहीं, होगा तो वही जो होना है।

हो सकता है दोनों ही भगवान का स्मरण करने लगें, णमोकार मंत्र पढ़ने लगें, दोनों ही निर्भय दिखाई दें। देखनेवालों को दोनों एक से ही दिखाई देंगे; जबकि उन दोनों के भावों में महान अंतर है। वह अंतर ऊपर से दिखाई नहीं देगा; क्योंकि वह उनके अंतर का अंतर है; दोनों के चिंतन के आधार का अंतर है। दोनों की निर्भयता का आधार अलग-अलग है।

अज्ञानी सोचता है—मैं णमोकारमंत्र पढ़ रहा हूँ, भगवान का स्मरण कर रहा हूँ—इसके

प्रभाव से अभी देवता आवेंगे और मुझे बचा लेंगे, क्योंकि उसने शास्त्रों में ऐसी कई कथाएँ पढ़ रखी हैं; जिनमें ऐसा लिखा था कि कोई धर्मात्मा संकट में था, उसने णमोकार मंत्र का स्मरण किया और देवताओं ने उसकी रक्षा कर ली। उसी के आधार पर वह भी आशा लगाये बैठा है, जोर-जोर से णमोकार मंत्र पढ़ रहा है, ऊपर से निर्भय दिखाई देता है, पर अंदर से भयाक्रांत है; क्योंकि उसे यह भी तो पक्का विश्वास नहीं है कि देवता आवेंगे ही। यदि नहीं आये तो..... यह कल्पना ही उसे आंदोलित किये है। यदि कोई दूसरा उपाय दिखायी देता तो वह निश्चितरूप से णमोकारमंत्र के भरोसे नहीं बैठा रहता, जान जोखिम में नहीं डालता। उसे णमोकारमंत्र पर भी पक्का भरोसा नहीं है, उस पर विश्वास करना उसकी मजबूरी है, इसीलिए निर्भय नहीं रह पा रहा है।

णमोकारमंत्र पढ़ने से कभी किसी धर्मात्मा की रक्षा करने देवता आ गये थे—यह पौराणिक आख्यान सत्य हो सकता है, इसमें शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं है, पर इससे यह नियम कहाँ से सिद्ध होता है कि जब-जब कोई संकट में पड़ेगा और वह णमोकारमंत्र बोलेगा; तब-तब देवता आवेंगे ही, अतिशय होगा ही।

शास्त्रों में तो मात्र जो घटा था, उस घटना का उल्लेख है। उसमें यह कहाँ लिखा है—ऐसा करने से ऐसा होता ही है; यह तो इसने अपनी ओर से समझ लिया है; अपनी इस समझ पर भी इसको विश्वास कहाँ है ? होता तो आकुलित क्यों होता, भयाक्रांत क्यों होता ?

ज्ञानी भी णमोकारमंत्र पढ़ रहा है, शांत भी है; पर उसकी शांति का आधार णमोकारमंत्र पर यह भरोसा नहीं कि हमें बचाने कोई देवता आवेंगे, णमोकारमंत्र तो वह सहज अशुभभाव से तथा आकुलता से बचने के लिये बोलता है। उसकी निर्भयता का आधार तो 'क्रमबद्धपर्याय' की पोषक यही पंक्तियाँ हैं कि:—

हमकौं कछु भय ना रे..... ।

वह इस आशा में निर्भय नहीं है कि देवता बचा लेंगे; इस आधार पर निर्भय है कि मरना होगा तो मरूँगा ही, कोई बचा नहीं सकता और नहीं मरना होगा तो कोई मार नहीं सकता। मरने का समय आ गया होगा तो कोई टाल नहीं सकता और नहीं आया होगा तो बलात् कोई ला नहीं सकता। यदि इसी निमित्त से मरना होगा तो कोई बदल नहीं सकता और इस निमित्त से नहीं मरना होगा तो कोई मार नहीं सकता।

उसने तो द्रव्यस्वभाव के समान पर्यायस्वभाव को भी अच्छी तरह जान लिया है। 'जान लियो संसार' का यही भाव है। उसी के आधार पर वह निश्चिंत है।

न उसे द्रव्यस्वभाव में परिवर्तन की कोई इच्छा है और न पर्यायों के परिवर्तन में दखल करने का कोई आग्रह है। थोड़ी-बहुत व्याकुलता भी दिखाई दे, तो समझना चाहिए कि यह चारित्र की कमजोरी है, श्रद्धान का दोष नहीं; क्योंकि उसकी श्रद्धा तो निर्दोष द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर पूर्ण निर्दोष हो गई है।

दूसरे झूठी आशा बनाये रखने के लिये आप सत्य की अस्वीकृति का महानतम अपराध क्यों करना चाहते हो? और आशा भी दु:ख ही है, आशा के रहते आज तक न कोई सुखी हुआ है और न हो ही सकता है। विशेष बात तो यह है कि इसकी पूर्ति भी तो संभव नहीं है।

आचार्य गुणभद्र तो यहाँ तक लिखते हैं :—

"आशागर्त: प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता॥३६॥

प्रत्येक प्राणी के इतना बड़ा आशारूपी गड्ढा है कि उसकी पूर्ति के लिये सारा विश्व भी अणु के समान है अर्थात् नहीं के समान है, ऊँट के मुँह में जीरा है। फिर जीव भी तो अनंत हैं और प्रत्येक की ऐसी ही इच्छाएँ हैं, आशाएँ हैं; यदि इस विश्व का बंटवारा किया जाये तो किसके हिस्से में कितना आयेगा? इसलिये आशारूपी गड्ढे की पूर्ति तो संभव है नहीं, उसकी आशा करना भी वृथा है। सुखी होने का एकमात्र उपाय आशा का अभाव करना ही है।"[१]

आशा के अभाव में निराशा क्यों, अनाशा होगी; आशा के समान निराशा भी दु:खस्वरूप है, पर आशा के अभाव में होनेवाली अनाशा सुखस्वरूप है।

तथा आपने यह कहा कि आशा के अभाव में संसार में रहना दूभर हो जावेगा; तो ज्ञानी तो यही चाहते हैं कि संसार में रहना दूभर हो जावे। उन्हें संसार में रहना ही कहाँ है? वे तो संसार का अभाव कर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं; अत: उन्हें तो यह बात इष्ट ही है।

संसार के कार्यों में उत्साह नहीं रहेगा; तो यह भी अच्छा ही है। यह आत्मा संसार की ओर से निरुत्साहित होकर मुक्ति के मार्ग में उत्साहित हो, मुक्ति के मार्ग में लगे-यही तो क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा का सच्चा फल है। यदि यह होता है तो क्या बुरा होता है?

१. आत्मानुशासन, श्लोक संख्या ३६

मनोबल टूटता है तो टूट जाने दो, आत्मबल जगेगा। सांसारिक कार्यों में लगे मनोबल के टूटे बिना आत्मबल जागृत भी तो नहीं होता। संसार में कोई गड़बड़ न हो जाए—इस भय से पर्यायों की क्रमनियमितता के सत्य को स्वीकार करने से इंकार क्यों करते हो ?

भाई ! किसी भय या आशंका से इस महान सत्य को स्वीकार करने से इंकार न करो। चक्रवर्ती की कन्या का टीका आया है, चक्रवर्ती की सुंदर कन्या तेरे गले में वरमाला डालना चाहती है; इंकार मत कर ! यह बड़े सौभाग्य का अवसर है, इसे मत चूक, अन्यथा पछताना होगा। सभी प्रकार की अशुभ आशंकाओं से विराम ले और एक बार गंभीरता से विचार करके इस महान सत्य को स्वीकार कर ले; इसमें हमारा कोई स्वार्थ नहीं है, तेरा ही भला है। तेरे भले के लिये ही यह बात कर रहे हैं।

अभी इससप्रकार का भाव है, सो कह भी रहे हैं; यदि कल इसप्रकार का भाव भी न रहा तो न जाने फिर कोई कहनेवाला मिलेगा भी या नहीं।

(१९) प्रश्न :- जब सब-कुछ क्रमबद्ध ही है, तो आप व्यर्थ परेशान ही क्यों हो रहे हैं ? जब हमारी समझ में आना होगा, आ जावेगा और यदि नहीं आना होगा, तो नहीं आवेगा; आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ? बलात् हमारे माथे इसे क्यों थोपना चाहते हैं ?

उत्तर :- 'हम क्यों परेशान हो रहे हैं; इतने अधीर क्यों हो रहे हैं ?'—आपका यह संबोधन भी ठीक ही है। हम आपके कारण नहीं, अपने राग के कारण अधीर हो रहे हैं। हम भी चाहते हैं कि हम भी जगत की चिंता में व्यर्थ ही अधीर न हों; पर हम क्या करें हमें यह राग आ ही जाता है, आये बिना रहता नहीं है; और इस भूमिका में यह अनुचित भी नहीं है। वीतरागी भावलिंगी मुनिराजों को भी इसप्रकार का राग आये बिना नहीं रहता, अन्यथा परमागमों की रचना भी कैसे होती ? लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यह अच्छा है। आखिर है तो राग ही, है तो अधीरता और आकुलता का उत्पादक ही। उत्पादक क्या, स्वयं आकुलतारूप ही है। मुनिराजों के समान हमको भी यह राग आये बिना नहीं रहता कि जिस सत्य को हमने समझा है, जिससे हमें अनंत शांति मिली है; उस सत्य को सारा जगत समझे और संपूर्ण जगत को भी यह अभूतपूर्वक शांति प्राप्त हो।

(२०) प्रश्न :- आपकी भावना तो ठीक है, पर कोई न माने आपकी बात तो आप क्या करेंगे ?

उत्तर :- करेंगे क्या? कुछ नहीं। हम 'पर' में कर भी क्या सकते हैं? पर्यायों में फेरफार करने की बुद्धि से आकुलित जगत को देखकर करुणा आती है। सो जो कुछ जानते हैं-बोलने लगते हैं, लिखने लगते हैं; जिनकी भली होनहार होती है, वे सुनते हैं, समझते हैं, स्वीकार भी करते हैं, सुखी भी होते हैं, शांत भी होते हैं; और जो लोग नहीं सुनते, नहीं पढ़ते, नहीं विचारते, नहीं स्वीकारते; उनकी होनहार ही ऐसी है—ऐसा जानकर हम भी संतोष धारण करते हैं।

यही रास्ता तो बताया है; हमारे श्रद्धास्पद महापंडित टोडरमलजी ने। उन्हीं के शब्दों में:-

"जिसप्रकार बड़े दरिद्री को अवलोकनमात्र चिंतामणि की प्राप्ति हो और वह अवलोकन न करे, तथा जैसे कोढ़ी को अमृत-पान कराये और वह न करे; उसीप्रकार संसार पीड़ित जीव को सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बने और वह अभ्यास न करे तो उसके अभाग्य की महिमा हमसे तो हो नहीं सकती; उसकी होनहार ही का विचार करने पर अपने को समता आती है।"[१]

स्वभावदृष्टि से प्राप्त होनेवाले इस पर्यायगत महान सत्य को जानकर सभी आत्माएँ अनंतसुखी और शांत हों - इस पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ। [समाप्त]

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २०

नोट - प्रस्तुत लेखमाला 'क्रमबद्धपर्याय' नाम से आवश्यक संशोधन, परिमार्जन, परिवर्द्धन एवं ३५ से अधिक आचार्यों, मुनिराजों, व्रतियों और विद्वानों की मार्मिक सम्मति के साथ १८×२२/८ साइज में १४८ पृष्ठों में प्रकाशित हो चुकी है। जिसका मूल्य दातारों के सहयोग से लागत मूल्य का ६०प्रतिशत रखा गया है। जो कि इस प्रकार है—साधारण जिल्द २)५०, पक्की जिल्द ३)५०, प्लास्टिक कवर सहित पक्की जिल्द ४)५०।

अभी तक प्राप्त सात हजार पुस्तकों के आर्डर की पुस्तकें जैसे-जैसे बाइडिंग होकर आ रही हैं, क्रमशः भेजी जा रही हैं। आशा है १५ मार्च तक सबको भेज दी जावेंगी। अतः जल्दी के लिये लिखने का कष्ट न करें। जिन्हें किसी कारणवश (जैसे किसी निश्चित तिथि पर शादी में बांटना है आदि) जल्दी चाहिए तो वे ही विशेष पत्र लिखें, जिससे उन्हें समय से पूर्व पुस्तकें उपलब्ध कराई जा सकें। -संपादक

ज्ञान ही प्रत्याख्यान है

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की चौंतीसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है :—

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ॥३४॥

क्योंकि (ज्ञानी) अपने से अतिरिक्त सभी पदार्थों को पर जानकर प्रत्याख्यान करता है-इसलिये ज्ञान ही प्रत्याख्यान है—ऐसा नियम से जानना चाहिये।

इस गाथा में आचार्यदेव ने प्रत्याख्यान का स्वरूप बताया है।

अनादिकालीन अप्रतिबुद्ध जीव ने श्रीगुरु के मुख से देह से भिन्न आत्मा का स्वरूप सुनकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया; अब वह आचार्यदेव से विनयपूर्वक सम्यक्चारित्र प्रगट करने के लिये प्रत्याख्यान का स्वरूप पूछता है।

इस गाथा में त्याग का सच्चा स्वरूप बताया गया है। त्याग का सच्चा स्वरूप समझे बिना इस जीव ने अनंतबार कषाय की मंदता की, परंतु उसे यथार्थ त्याग नहीं हुआ और उसके भव का अंत नहीं आया। इसलिये यहाँ त्याग का सच्चा स्वरूप बताते हैं।

जिसने शरीर, मन, वाणी और पुण्य-पाप से भिन्न आत्मा को जानकर परपदार्थों और परभावों में एकत्वबुद्धि का त्याग कर दिया है; उस ज्ञानी आत्मा को ही सच्चा प्रत्याख्यान होता है।

यह भगवान ज्ञाताद्रव्य (आत्मा) अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले समस्त परभावों को अपने स्वभाव-भाव द्वारा व्याप्त न होने के कारण पररूप जानकर त्याग देता है। अपने से अतिरिक्त समस्त परपदार्थों तथा शुभाशुभ विकारी भावों को भिन्न जानकर अपने ज्ञानस्वभाव में ही एकाग्र होना प्रत्याख्यान है।

लोग कहते हैं कि जैनधर्म त्यागस्वरूप है—इसलिये त्याग करो, परंतु वे त्याग का

सच्चा स्वरूप नहीं जानते। वास्तव में परपदार्थों का तो आत्मा में अस्तित्व ही नहीं है और राग भी मात्र एकसमय की पर्याय में है, वह भी त्रिकालीस्वभाव में नहीं है। जिसकी दृष्टि देह और राग के अभावरूप स्वभाव पर पड़ी हो उसको परपदार्थों के त्याग का विपरीत अभिप्राय नहीं रहता। स्वभाव में एकाग्रता ही सच्चा प्रत्याख्यान है। तथा जो जीव स्वरूप में लीनतारूप चारित्र का पुरुषार्थ करते हैं, उनके वस्त्रादि बाह्य संयोग भूमिकानुसार स्वयं ही छूट जाते हैं।

शास्त्र में अनेक बार व्रत, तप, निर्लोभता, दया आदि की महिमा का वर्णन किया गया है तथा व्रतादि धारण करने की प्रेरणा भी दी जाती है, क्योंकि स्वरूप में पूर्ण स्थिरता न होने से ज्ञानी की भूमिका में ऐसे भाव आते ही हैं; तथापि ज्ञानी इन भावों को अपने स्वभाव से भिन्न जानते हैं। रागादि को अपने से भिन्न जानना ही प्रत्याख्यान है। ऐसा प्रत्याख्यान ज्ञानी को निरंतर वर्तता है, और उस भूमिका में होनेवाले त्यागरूप परिणाम को उपचार से प्रत्याख्यान कहा जाता है।

यहाँ व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभ परिणामों को भी पर कहा है। ज्ञानी जानते हैं कि कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले रागादि भावों में मेरा निर्मल ज्ञायकस्वभाव व्याप्य नहीं है। विकार में अविकारी स्वभाव का विस्तार नहीं है, उसमें तो कर्मों का ही विस्तार है। मुझमें कभी विकार हुआ नहीं, वर्तमान में है नहीं, और भविष्य में होगा नहीं—ऐसी दृष्टि के बल से ज्ञानी रागादि को अपने से भिन्न जानते हैं।

रागरहित स्वभाव की श्रद्धारूप सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर तुरंत ही परिपूर्ण चारित्र प्रगट नहीं हो जाता है। चारित्रमोह के उदयवशात् पर्याय में शुभाशुभ राग होता है, परंतु उसमें कर्म ही व्याप्त है, ज्ञानस्वभावी आत्मा व्याप्त नहीं है। आत्मा सदा विकार के अभावरूप और चैतन्य स्वभाववाला है—ऐसा जानना ही प्रत्याख्यान है।

कोई कहे कि रागादि को अपने से भिन्न जानना ही प्रत्याख्यान है तो फिर मजे से खाओ-पीओ, आनंद करो; त्याग करने की क्या आवश्यकता है ? तो उससे कहते हैं कि भाई! रागादि को पर जानकर अपने ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होना प्रत्याख्यान है और उसमें अनंत पुरुषार्थ है। जिसकी दृष्टि राग से भिन्न ज्ञानस्वभाव में तन्मय होती है, उसे स्वभाव में लीनता में ही सच्चा सुख भासित होता है। खाने-पीने में सुख है—ऐसा उसका अभिप्राय ही नहीं रहता।

गुरु के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो जाना प्रत्याख्यान नहीं है। वह तो व्यवहारनय से

प्रत्याख्यान कहा जाता है। ज्ञानी की भूमिका में भी विनय और व्रतादि का व्यवहार होता है। ज्ञानीजीव गुरु के निकट विनयपूर्वक आगमानुकूल व्यवहार की विधि में प्रवर्तते हैं, किंतु उस शुभभाव को अपने त्रिकालीस्वभाव में स्वीकार नहीं करते। ज्ञानी को व्रत लेने की शुभवृत्ति उठती है; परंतु वे जानते हैं कि यह वृत्ति मेरे स्वभाव में नहीं है, इसमें मेरे स्वभाव का विस्तार नहीं है; मेरे स्वभाव का विस्तार तो ज्ञान, आनंद और शांति में है।

ज्ञानी चारित्र ग्रहण करने के शुभभाव को भी पर जानकर उसका त्याग करना चाहते हैं। वीतरागी चारित्र तो ग्रहण करना चाहते हैं, परंतु ग्रहण करने का विकल्प तो राग है इसलिये उसका त्याग करना चाहते हैं। फिर भी भूमिकानुसार व्रतादि का परिणाम आये बिना नहीं रहता। व्रतादि का शुभ विकल्प व्यवहार से प्रत्याख्यान है तथा स्वरूप में स्थिरता परमार्थ से प्रत्याख्यान है।

जो रागादि भावों को पररूप जानता है, वही स्वरूप में एकाग्र होकर उनका त्याग कर सकता है। रागादि को अपना स्वभाव माननेवाला उनका त्याग नहीं कर सकता। इसलिये जिसे रागादि से भिन्न आत्मा का अनुभव हुआ है, उसे ही सच्चा प्रत्याख्यान होता है।

ज्ञानी को मुनिपना लेने का तथा प्रत्याख्यानादि करने का शुभ विकल्प होता है, परंतु ऐसे विकल्प हुए—इसलिये उसे प्रत्याख्यान हुआ—ऐसा नहीं है। राग स्वयं राग का त्याग करनेवाला कैसे हो सकता है? स्वभाव को जानकर उसमें लीन होने से ही राग का त्याग होता है, त्याग के शुभ विकल्पों से नहीं।

ज्ञानस्वभाव में स्थिर होने से ही सच्चा प्रत्याख्यान होता है—ज्ञानी ने ऐसा निर्णय किया है। दीक्षा लेकर वन में जाने से या सदोष आहारादि का त्याग करने से प्रत्याख्यान हो जाएगा—ऐसा उनका निर्णय नहीं है। जो जाननेवाला है, वही स्वरूप में स्थिर होगा—ऐसा ज्ञानी जानते हैं।

इस आत्मा को रागादि के त्याग का कर्तृत्व नाममात्र का है। जीव ने राग का त्याग किया—ऐसा कहना असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। वास्तव में आत्मा का स्वभाव तो रागरहित ही है। स्वभाव की अपेक्षा देखा जाये तो 'रागादि का त्याग करूँ'—ऐसा कर्तापने का नाम भी आत्मा को नहीं है। 'रागादि को छोड़ूँ'—ऐसा विकल्प भी उपाधि है, आत्मा का स्वभाव नहीं।

त्रिकालीस्वभाव के आश्रय से निर्मल पर्याय का उत्पाद एवं मलिन पर्याय का व्यय होना-व्यवहार है। ज्ञानी की दृष्टि निर्मल पर्याय के उत्पाद एवं मलिन पर्याय के व्यय पर नहीं है, उनकी दृष्टि तो उत्पाद-व्ययरहित ध्रुवस्वभाव पर है, क्योंकि पर्याय के लक्ष्य से निर्मलता प्रगट नहीं होती, ध्रुव के लक्ष्य से सहज ही निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं।

अज्ञानी कंचन, कामिनी और कुटुंब के त्याग की बात करते हैं, जबकि आत्मा में तो पुण्य-पाप का त्याग भी नाममात्र को ही है। अज्ञानी को सच्चा त्याग नहीं होता, उसे तो अंतराय का उदय है इसलिये बाह्य संयोग नहीं मिलते, परंतु मेरे राग की मंदता के कारण संयोग का अभाव हो गया—ऐसा मानकर वह मिथ्यात्व का पोषण करता है।

जिस राग का अभाव होता है, वह तो आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं और जो ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, वह आत्मा से कभी छूटता नहीं है। आत्मा अपने ध्रुव अखंड ज्ञायकस्वभाव से कभी च्युत नहीं होता—इसलिए ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

आत्मा के मूलस्वभाव में ग्रहण-त्याग है ही नहीं। आत्मा ने परपदार्थों और परभावों को ग्रहण किया हो तभी तो उनका त्याग कर सकता है। मकान, कुटुंब, लक्ष्मी, राग-द्वेष आदि आत्मा में प्रविष्ट ही नहीं हुए तो उनका त्याग कैसे कहा जा सकता है? मकान आदि आत्मा में तो नहीं, परंतु मान्यता में अवश्य प्रविष्ट हो गये हैं; यह मान्यता ही अप्रत्याख्यान है तथा इस मान्यता का त्याग करके स्व-पर का यथार्थ भेदज्ञान करना ही प्रत्याख्यान है।

भारतीय संस्कृति में त्याग की अत्यंत महिमा है, किंतु लोगों को त्याग का सच्चा स्वरूप नहीं मालूम; इसलिये बहुत से लोग मात्र बाह्यत्याग में ही अटक जाते हैं। परपदार्थों में एकत्वबुद्धि का त्याग ही सच्चा त्याग है। पर में एकत्वबुद्धि छूटने पर परपदार्थों का संयोग भी भूमिकानुसार सहज छूट जाता है।

त्याग करनेवाला जीव सर्वप्रथम तत्त्वनिर्णय करता है कि बाह्य पदार्थ तो मेरे हैं ही नहीं, उन्हें ग्रहण करने अथवा छोड़नेरूप अव्रत और व्रत के परिणाम भी मेरे स्वभाव में नहीं हैं। अणुव्रत तथा महाव्रतादि के परिणामों में भी मेरे स्वरूप का विस्तार नहीं है, मैं तो व्रत-अव्रत के विकल्पों से रहित ज्ञान-आनंदस्वभावी हूँ।

परपदार्थ और विकारीभाव तो मेरे हैं ही नहीं, परंतु उन्हें जानते समय भी निश्चय से तो मैं अपने ज्ञानस्वभाव को ही जानता हूँ। परपदार्थों के कर्तृत्व की तो बात ही क्या—'मैं उनका

ज्ञाता हूँ'—ऐसा कहना भी व्यवहार है। वास्तव में तो मैं अपने स्व-परप्रकाशक स्वभाव का ही ज्ञाता हूँ।

इसप्रकार तत्त्वनिर्णयपूर्वक ही सच्चा प्रत्याख्यान होता है। सच्चे प्रत्याख्यानपूर्वक होनेवाले व्रतादि के परिणाम व्यवहार से प्रत्याख्यान कहे जाते हैं, परंतु निश्चयप्रत्याख्यान के बिना मात्र व्रतादिरूप शुभभावों की कोई कीमत नहीं है। वास्तव में तो सम्यग्दर्शनपूर्वक ही व्रतादि के परिणाम होते हैं। सम्यग्दर्शन के बिना मात्र मंदकषाय को तो बाल-व्रत कहा है। अज्ञानदशा में होनेवाले बाह्य त्याग को ही सच्चा व्रत मानना अज्ञान है। इस जीव ने सम्यग्दर्शन बिना अनंत बार व्रतादि के शुभ परिणाम किये, परंतु उन सब को यह अज्ञान रूपी भैंसा खा गया अर्थात् उनसे धर्म नहीं हुआ, संसार का अंत नहीं आया।

यहाँ शुभभाव छोड़कर अशुभभाव करने की बात नहीं कही जा रही है। यह तो प्रत्याख्यान का सच्चा स्वरूप समझने की बात है। ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि से देखा जाए तो आत्मा को परभाव के कर्तृत्व का नाममात्र भी नहीं है। आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव से कभी पृथक् नहीं होता, इसलिये वास्तव में तो ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

ज्ञानी को पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण रागादि भाव होते हैं, परंतु त्रिकाली द्रव्य-स्वभाव की प्रतीति के बल से वे उन्हें अपना स्वरूप नहीं मानते। स्वभाव में स्थिर होने से रागादिभाव सहज ही छूट जाते हैं—इसलिये स्वभाव में स्थिरता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही प्रत्याख्यान है।

अहो! जगत को प्रत्याख्यान के स्वरूप की खबर नहीं है। वर्तमान काल में तो जीवों की वैराग्य-परिणति भी नहीं है। धन्धे-व्यापार, विषय-कषाय आदि में ही मस्त होकर मानव जीवन व्यर्थ गँवा रहे हैं। यदि कदाचित् किसी को धर्मबुद्धि भी हो तो वह बाह्यत्याग में ही संतुष्ट हो जाता है। इसलिये आचार्यदेव यहाँ प्रत्याख्यान का सच्चा स्वरूप समझाते हैं।

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

जैसे सिद्ध वैसे ही संसारी

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की ४८वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोक पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :—

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया॥४८॥

जिसप्रकार लोकाग्र में सिद्ध भगवंत अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा (विशुद्धस्वरूपी) हैं; उसीप्रकार संसार में (सर्व) जीव जानना।

एकसमय की पर्याय को गौण करके देखा जावे तो कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में भेद नहीं है। यह कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अंतर न होने का कथन है।

प्रकट पर्याय की अपेक्षा से सिद्ध और संसारी में महान अंतर है—ऐसा शास्त्रों में बहुत कथन है; और यहाँ अंतर है नहीं—ऐसा क्यों कहा?

भाई! वह सारा वर्णन पर्याय का है और यहाँ एकसमय की पर्याय को गौण करके देखने पर कोई अंतर नहीं है—ऐसा कहा।

कार्यसमयसार—जिसने अपना कार्य अर्थात् परिपूर्ण शुद्धता प्रकट की है—ऐसे सिद्ध भगवान को कार्यसमयसार कहते हैं। सिद्ध, कार्यसमयसार, कार्यशुद्धजीव, कार्यभगवान इत्यादि एकार्थवाची हैं।

कारणसमयसार कारणशुद्ध आत्मा। जिस शुद्धात्मा के आश्रय से मोक्षरूपी कार्य प्रकट होता है, उसको कारणसमयसार कहते हैं। कारणसमयसार, कारणशुद्धआत्मा, कारणशुद्धजीव, कारणशुद्धभाव, कारणपरमात्मा, त्रिकालशुद्धस्वभाव, द्रव्यदृष्टि का विषय ध्रुव, नित्य, एकरूपअभेदस्वभाव, कारणभगवान—यह सब एकार्थवाची हैं। इस शुद्धात्मा में लीनता करने से मोक्षरूपी कार्य प्रकट होता है इसलिये उसे कारण कहा है।

पर्याय को गौण करके देखने पर कारणसमयसार और कार्यसमयसार में कोई अंतर नहीं है।

(१) द्रव्यार्थिकनय से सिद्धसमान संसारीजीव भी अशरीरी ही हैं।

सिद्धभगवान लोक के अग्र में विराजते हैं—यह कथन बाह्यक्षेत्र की अपेक्षा से है, वास्तव में तो वे अपने असंख्यप्रदेश में ही विराजते हैं। उन्हें परिपूर्णदशा प्रकट हो गयी है और वे औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण—इन पाँचों शरीररहित हैं। संसारदशा में राग और शरीर का एक समय जितना संबंध था, वह अब सिद्धभगवान के नहीं है, इसलिये वे अशरीरी हैं।

इसीप्रकार से समस्त संसारीजीवों को शुद्धनय से देखा जावे तो वे भी अशरीरी हैं। संसारदशा में संसारीजीवों को राग के साथ तथा जिसको जैसा शरीर है उसके साथ—एकसमय जितना ही संबंध है। दो समय की पर्यायें एक साथ नहीं होतीं, इसलिये एकसमय का ही संबंध कहा है। उस एकसमय की पर्याय को गौण करके देखा जावे तो संसारी भी अशरीरी ही हैं। शरीर के संबंध को मुख्य करने पर चैतन्य गौण हो जाता है और वही संसार है—तथा शरीर के संबंध को गौण करते नहीं, अतः धर्म नहीं होता। चैतन्य को मुख्य करके शरीर-संबंध को गौण करना ही धर्म है। कर्म के साथ एकसमयमात्र का संबंध है, उसे गौण करने पर आत्मा को कार्माण शरीर का भी संबंध नहीं है।

प्रश्न :- कर्म के उदय आने पर विकार होता है और उसका अभाव होने पर विकार टलता है न?

समाधान :- नहीं, संसारदशा में भी ऐसा संबंध है ही नहीं। जीव विकार करके एकसमयमात्र का पर्याय में भावबंध करता है, तब कर्म का निमित्त कहा जाता है। अभव्य जीव को भी कर्म के कारण से विकार नहीं होता, किंतु अपने ही अपराध से होता है। अभव्य जीव अनादि से संसार में है और अनंतकाल तक रहेगा; उसके भूतकाल के संसार की अपेक्षा भविष्य के संसार का काल अनंतगुणा है। द्रव्यस्वभाव से देखो तो उसका आत्मा भी अशरीरी ही है। एकसमय के शरीर-संबंध को गौण करके, व्यवहार कहकर, अभूतार्थ कहा है—वहाँ भूतार्थ ऐसे शुद्धस्वभाव की दृष्टि करानी है। जो जीव स्वभाव की रुचि करे, उसे संसार का अभाव होता है और पर्याय में भी अशरीरीदशा प्राप्त होती है।

(२) जैसे सिद्धों को नर-नारकादि पर्यायें नहीं हैं, इसलिये वे अविनाशी हैं; वैसे

ही शुद्धद्रव्यार्थिकनय से संसारीजीवों को भी भव-पर्याय का ग्रहण-त्याग नहीं है, इसलिये अविनाशी हैं।

निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के ग्रहण-त्याग के अभाव के कारण अविनाशी हैं। सिद्धभगवंतों ने अशरीरीदशा—मोक्षदशा प्राप्त कर ली है, इसलिये नर-नारकादि भवरूप पर्यायों का त्याग-ग्रहण उनके होता नहीं; जबकि संसार में एक भव के बाद दूसरा भव—इसप्रकार विनाशरूप अवस्था पर्याय में होती है। सिद्धों में ऐसा विनाशपना पर्याय में होता नहीं, शरीर का आवागमन होता नहीं, इसलिये अविनाशी हैं। उसीप्रकार शुद्धद्रव्यार्थिकनय से देखा जावे तो संसारीजीव भी अविनाशी हैं—ऐसा बताना है।

संसारदशा में भिन्न-भिन्न शरीरों का संबंध होता है, एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर का धारण होता है। कोई जीव अधिक स्थितिवाला एक ही शरीर धारण करे, तथापि उस शरीर के त्याग-ग्रहण का संबंध एक ही समय का है। कोई कहे कि एकसमय जितना भी संबंध नहीं है और पर्याय में भी संसारीजीव अविनाशी है, तो यह बात खोटी है। एक शरीर का जाना और दूसरे शरीर का ग्रहण करना संसारदशा में होता ही है, अतः वह संबंध विनाशीक है। वह संबंध है अवश्य, फिर भी त्रिकालीस्वभाव की दृष्टि से देखा जावे तो वह संबंधनहीं है। सिद्धपर्याय में भी अविनाशीपना रहता है अर्थात् सिद्धपद सादि अनंतकाल रहता है। संसारी के एक समय की पर्याय के शरीर-संबंध को गौण करके व्यवहार अभूतार्थ मानकर त्रिकालीस्वभाव अविनाशी है—ऐसी दृष्टि कराना धर्म का कारण है।

व्यवहारनय अभूतार्थ है, भूतार्थ शुद्धनय के आश्रय से बोधिबीज बोने से केवलज्ञान प्रकट होता है।

समयसार गाथा ११ में कहा है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है। एकसमय की पर्याय अर्थात् राग, द्वेष, अज्ञान, संसार को अभूतार्थ कहा; उसका अर्थ सर्व अभाव है—ऐसा नहीं समझना, क्योंकि सर्वथा अभाव हो तो संसार ही न हो। संसार-पर्याय गौण करके, होती हुई पर्याय को अनहोती करके, व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा है, कारण कि त्रिकालीस्वभाव में वह नहीं है। त्रिकालज्ञानस्वभाव शक्तिरूप भंडार है, उसका स्वीकार करना धर्म का कारण है। शुद्धनय के आश्रय से अर्थात् स्वभाव के लक्ष्य से अपने में सम्यग्ज्ञानरूपी द्वितीया उदय होती है और केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा हुए बिना रहती नहीं।

(३) जैसे सिद्धभगवंत सहज केवलज्ञान से युगपत् जानते हैं, अतः अतीन्द्रिय हैं; वैसे ही शुद्धद्रव्यदृष्टि से संसारीजीव भी अतीन्द्रिय हैं।

परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहज ज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं, ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण सिद्ध अतीन्द्रिय हैं।

ध्रुवसामान्यस्वभाव अथवा शुद्धकारणपरमात्मा को परमतत्त्व कहते हैं। उस शुद्धकारणपरमात्मा सहजज्ञानदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को सिद्धभगवंत तथा केवली भगवंत केवलज्ञान से परिपूर्ण जानते हैं, उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं रहा, ऐसे स्वरूपवाले होने से सिद्धभगवंत अतीन्द्रिय हैं। उसीप्रकार संसारी जीवों को भी यहाँ अतीन्द्रिय कहा है। एकसमय जितना इंद्रियों और ज्ञान के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है तथा एकसमय जितना ही मिथ्याज्ञान अथवा अपूर्णज्ञान है; यदि इस पर्याय को गौण कर दें तो समूचा त्रिकालीस्वभाव अनादि-अनंतज्ञान-दर्शन से भरपूर पड़ा है। भविष्य में प्रकट होगा उसकी बात नहीं है, किंतु त्रिकाल को जानने में वर्तमान समर्थ है। अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिकनय से देखा जावे तो संसारीजीव भी अतीन्द्रिय है।

मुझे याद नहीं रहता, मेरी स्मरणशक्ति निर्बल है—ऐसी अल्पज्ञता को भूल जा, यह भेद तो व्यवहार में जाता है। अल्पज्ञता की एकसमय की पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर अभूतार्थ कहा है तथा अनंतज्ञान-दर्शन से भरपूर स्वभाव को भूतार्थ कहकर संसारी आत्मा को भी शुद्धनिश्चयनय से अतीन्द्रिय कहा है।

अल्पज्ञता के साथ एकत्वबुद्धि संसार का कारण है; तथा अतीन्द्रियस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और लीनता केवलज्ञान का कारण है।

अहो! आचार्य भगवंत ने शुद्धस्वभाव के गीत बहुत गाये हैं, विशेषकर नियमसार में अवलोकन करने को मिलेंगे। वस्तु की मर्यादा दो प्रकार की है। या तो भेद अथवा अल्पज्ञता के साथ एकत्वबुद्धि करके संसार-भ्रमण करे अथवा भेद और विकार को गौण करके त्रिकाली के साथ संबंध रखे तो धर्म प्राप्त करे। इस बोल में ऐसा कहते हैं कि मेरा ज्ञान अल्प है और विशेष बढ़ाना है—ऐसी भेद के ऊपर की दृष्टि छोड़—यह सब अभूतार्थ में जाता है; प्रत्येक जीव का ज्ञानस्वभाव अतीन्द्रिय है—उसी के सामने देख, उसमें तीनों काल जानने की शक्ति है।

इसप्रकार अतीन्द्रियस्वभाव का लक्ष्य करने पर सम्यक्स्वभाव प्रकट करके क्रम-क्रम से केवलज्ञान प्रकट होता है।

(४) सिद्धभगवंतों के विभाव-भाव का अभाव है, इसलिये निर्मल हैं; उसीप्रकार शुद्धद्रव्यार्थिकनय से संसारी जीव भी स्वभाव से निर्मल हैं।

मलजनक क्षायोपशमिकादि विभाव-स्वभावों के अभाव के कारण निर्मल हैं।

सिद्धभगवंतों के क्षायोपशमिकभाव, औदयिकभाव तथा औपशमिकभाव का अभाव है, उनके क्षायिकभाव प्रकट हो गया है, अतः वे निर्मल हैं; उसीप्रकार शुद्धनिश्चयदृष्टि से देखा जावे तो संसारी भी निर्मल हैं। उनका स्वभाव तो मैलरहित एकरूप है, इसलिए संसारी जीव के वर्तमान जो उदयादिभाव हों उनके ऊपर का लक्ष्य छुड़ाने के लिये उनका त्रिकाल में अभाव है—ऐसा कहते हैं। इन चारों भावों के ऊपर से लक्ष्य छुड़ाने का कारण क्या है, वह बतलाते हैं:—

(१) औदयिकभाव तो विकार है, अतः वह धर्म का कारण नहीं है।

(२) क्षायोपशमिकभाव है वह वास्तव में मलजनक नहीं, किंतु ज्ञान का अंश है। चूँकि वह एकसमयमात्र की स्थितिवाला है, उसका आश्रय करने से राग की उत्पत्ति होती है, अतः उसके ऊपर का लक्ष्य छुड़ाया है। क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व किसी भी जीव को प्रवाहरूप से ६६ सागर तक टिकता है, वह भिन्न बात है, किंतु है वह एकसमय की पर्याय ही, अतः उसके लक्ष्य से राग उत्पन्न होता है और इसीकारण से उसे मलजनक कहा गया है।

(३) उपशमसम्यक्त्व अथवा उपशमचारित्र भी वास्तव में मलजनक नहीं है, वह निर्मल पर्याय है, किंतु उसका आश्रय लेने जावे तो राग उत्पन्न होता है, वह स्थिरता का कारण नहीं होता। उपशमभाव प्रवाहरूप से अंतर्मुहूर्त टिकता है, किंतु वह है एकसमय की पर्याय ही और उसके आश्रय से राग उत्पन्न होता है, इसलिए उसे मलजनक कहकर आचार्यदेव उसका आश्रय लेना छुड़ाते हैं।

(४) क्षायिकभाव भी एकसमय की पर्याय है और उसका लक्ष्य करने पर राग उत्पन्न होता है, अतः आगे बढ़ नहीं पाता। इसलिये पर्याय का आश्रय छुड़ाने के अभिप्राय से क्षायिकभाव को भी मलजनक कहा है।

इसप्रकार चारों भावों का लक्ष्य छुड़ाने के आशय से उन्हें मलजनक कहकर शुद्ध पारिणामिकभाव का लक्ष्य कराया गया है।

सिद्धभगवान के उदय, उपशम, क्षयोपशम—इन तीन मलजनक भावों का अभाव है, किंतु क्षायिकभाव का अभाव नहीं—सद्भाव है। सिद्धभगवंतों के क्षायिकभाव की परिपूर्णदशा प्रगट हो गई है, उन्हें कुछ भी प्रकट करना शेष नहीं है। संसारीजीव के क्षायिकभाव प्रकट नहीं है, और जो प्रकट नहीं है, उसका विचार करने से राग होता है, इसलिये संसारी के लिये क्षायिकभाव भी मलजनक है—ऐसा कहा। सिद्ध में क्षायोपशमिकादि तीन भावों का तथा संसारीजीव में दृष्टि अपेक्षा से चारों भावों को गौण करके उनका अभाव कहा है और द्रव्यदृष्टि से उसे निर्मल कहा है। इसप्रकार चारों भावों का लक्ष्य छोड़कर अपने शुद्धभाव को लक्ष्य में लेने पर पर्याय में निर्मलता प्रकट होती है।

(५) सिद्ध के समान द्रव्यदृष्टि से संसारजीव विशुद्धात्मा है।

द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के अभाव के कारण सिद्ध विशुद्धात्मा है; उसीप्रकार संसार में भी यह संसारीजीव किसी नय के बल से (किसी नय से) शुद्ध है।

सिद्धजीवों के समस्त विकार तथा समस्त जड़कर्मों का अभाव है, इसलिये वे विशुद्धात्मा हैं। उसीतरह संसारीजीव को एकसमय जितना विकार है, उसका निमित्त जड़कर्म है, बाह्य में देव-शास्त्र-गुरु निमित्त हैं, और पर्याय में क्षयोपशमभाव है, परंतु उनमें से किसी से भी आत्मा को लाभ नहीं है; अतः उन सबको गौण करके, व्यवहार कहकर, अभूतार्थ कहा है, कारण कि त्रिकाली शुद्धस्वभाव में उन सबका अभाव है; तथा शुद्धद्रव्यार्थिकनय से संसारीजीव भी विशुद्धात्मा ही हैं—ऐसा स्वीकार करने पर पर्याय में धर्मदशा प्रकट होती है। शुद्धदृष्टि से देखा जावे तो सिद्ध और संसारी में कोई अंतर नहीं है—ऐसा ४८वीं गाथा में कहा।

अब उसकी टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज कहते हैं:—

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारणकार्यतत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्॥७२॥

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती हैं; सम्यग्दृष्टि को तो सदा ऐसी मान्यता होती है कि कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इसप्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुंदर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वंदन करते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव को अपने स्वरूप में सदा शंका होती है।

मिथ्यादृष्टि जीव को अपने आत्मा के स्वरूप में सदा शंका रहती है। आत्मा त्रिकाल जो शुद्ध कहा है, वह शुद्ध होगा या अशुद्ध होगा?—ऐसी शंका रहती है। शरीर और कर्म जड़पदार्थ 'पर' हैं और विकार एकसमय मात्र का है, दोसमय का कभी एकत्र हुआ नहीं, विकार से रहित त्रिकाली आत्मा अंदर शुद्ध पड़ा है—इसकी शंका रहती है। शास्त्र में अशरीरी, अतीन्द्रिय, अविनाशी, द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित आत्मा कहा है—यह बात उसे जमती नहीं। वर्तमान विकार का अज्ञानी सेवन कर रहा है।

जिसप्रकार तिल को पेलने से तेल निकलता है, कंकड़-पत्थर पेलने से नहीं; जिसप्रकार लेंडीपीपल कच्ची खाने से चौसठ पहरी चरपराहट का अनुभव नहीं होता; जिसप्रकार मयूर के अंडे में मयूर बनने की शक्ति है—वह अंडे को खड़खड़ाने से ज्ञात नहीं हो सकती, परंतु उसकी शक्ति में से साढ़े तीन हाथ का मयूर बन जाता है, कहीं बाहर के छिलके में से नहीं होता; उसीप्रकार भगवान आत्मा विकाररहित है, उसकी शक्ति में से स्वभाव प्रस्फुटित होकर सिद्ध होता है, कहीं पुण्य-पाप के भाव में से सिद्धत्व प्रकट नहीं होता; किंतु क्या करें? अज्ञानी को इस बात का विश्वास ही नहीं होता। निमित्त हो, शुभभाव हो तो सिद्धदशा हो—ऐसी मिथ्या मान्यता करने के कारण संसार चालू है।

सम्यग्दृष्टि जीव कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों को शुद्ध मानता है।

धर्मी जीव को ऐसी प्रतीति है कि परमात्मा जिसको कार्य प्रकट हो गया है और कारणपरमात्मा जो अनादि-अनंत मेरे में पड़ा है—इन दोनों में कोई अंतर नहीं है, दोनों ही शुद्ध हैं। पर्याय में शुभाशुभभाव होने पर भी मेरा स्वभाव कभी विकारी हुआ ही नहीं—वह तो सदा शुद्ध ही है। मिथ्याश्रद्धा छोड़कर सम्यक्श्रद्धा करूँ, मिथ्याज्ञान छोड़कर सम्यग्ज्ञान करूँ—ऐसा भेद कारणपरमात्मा में नहीं है। कारणतत्त्व एकस्वरूप में विराजता है, वह सदा शुद्ध है; और कार्यतत्त्व जो सिद्धभगवान को प्रकट हुआ है, वह भी शुद्ध है—इन दोनों तत्त्वों में कोई अंतर नहीं है, दोनों शुद्ध हैं—ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है।

परमागम के रहस्य के ज्ञाता सुंदर बुद्धिवाले भावलिंगी मुनि को नमस्कार

इसप्रकार भगवान की वाणी से रचित परमागम के गंभीर अर्थ को सारासार के विचारवाली सुंदरबुद्धि से जो सम्यग्दृष्टि मुनि स्वयं जानते हैं, उनको हम वंदन करते हैं।

परमागमों में क्या कहा? दया-दानादि विकार असार हैं और त्रिकाल ज्ञातादृष्टा शुद्धस्वरूप एक ही सार है। मुनियों को सारासार की विवेकबुद्धि है और मानते हैं कि मैं तो त्रिकालशुद्ध हूँ। सम्यग्दृष्टिपना अथवा मिथ्यादृष्टिपना, त्यागपना अथवा अत्यागपना, यह सब पर्याय में है, सम्यग्दर्शन के ध्येय में ऐसा भेद नहीं है, उसका ध्येय तो अखंड शुद्धआत्मा है; पुण्य-पाप भाव आते हैं उनको व्यवहार से जानते हैं, किंतु उनसे सम्यग्दर्शन टिकता है अथवा चारित्र बढ़ता है—ऐसा नहीं मानते। शुद्धस्वभाव के अवलंबन से वह टिकता है और बढ़ता है तथा वही एक मोक्ष का साधन है—ऐसा वे मानते हैं।

पुनश्च, इस बात को मुनि स्वयं जानते हैं, कहीं शास्त्र से अथवा गुरु से जानते हैं—ऐसा नहीं कहा; किंतु अपने से स्वयं जानते हैं, अर्थात् मोक्ष के लिये साधन मैं स्वयं हूँ दूसरा कोई नहीं है। टीकाकार मुनिराज कहते हैं कि ऐसे धर्मात्मा भावलिंगी मुनि जो सुंदर बुद्धिवाले हैं और जो साररूप तत्त्व स्वयं जानते हैं, उन्हें हम वंदन करते हैं। यह टीकाकार मुनिराज की निर्मानता का द्योतक है।

संयोग तो संयोग ही है

एक बार एक अकेला निर्धन व्यक्ति बम्बई गया। वहाँ जाकर उसने व्यापार शुरु किया और धीरे-धीरे लाखों रुपये कमा लिये। फिर अपना विवाह किया, संतान हुई। लड़कों का भी विवाह कर दिया, परिवार में कुल बारह आदमी हो गये। मकान आदि भी बन गये। लेकिन कुछ वर्षों में एक के बाद एक सब मर गये, मकान चले गये, संपत्ति सब नष्ट हो गयी और भाई साहब ज्यों के त्यों अकेले लौट आये।

देखो यह संयोग! इंद्र पद या चक्रवर्ती पद में संयोग की भी यही स्थिति है। इसलिये हे जीव! संयोग में से सुख-प्राप्ति की आशा छोड़कर अपने निजस्वभाव की भावना कर। आत्मस्वभाव में सुख है और उस स्वभाव की भावना से प्रगट हुआ सुख सदैव आत्मा के साथ ही रहता है; किन्हीं भी संयोगों में उस सुख का वियोग नहीं होता। संयोग में माना हुआ सुख उस संयोग के वियोग में स्थिर नहीं रह सकता। किंतु नित्यचित्स्वभाव में से आया हुआ सुख संयोग के बिना भी सदैव बना रहता है।

—पूज्य कानजीस्वामी

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

यहाँ उपादान-निमित्त की बात भी स्पष्ट है। निमित्त के गुण उपादान में नहीं आते, इसलिये निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता है। जैसे-कड़ा, कुंडल आदि का मूलकारण स्वर्ण स्वयं ही है। जिसका जो गुण प्रारंभ से अंत तक एक-सा रहे, वह उसका कारण है, अन्य नहीं।

श्वेतांबर सूत्र में पाठ आता है कि जीव और पुद्गल की पर्याय को 'काल' कहते हैं। परंतु उनकी यह बात ठीक नहीं है। यदि जीव और पुद्गल की पर्याय 'काल' मानी जाये तो जीव और पुद्गल के गुण 'काल' में आ जाने चाहिये। यह बात बनती नहीं है। 'समय' पर्याय कालसूचक है, इसलिये उसके कारणरूप द्रव्य उन गुणवाला होना चाहिये।

जो जीव कालद्रव्य को नहीं मानते उनकी तत्त्व संबंधी भूलें भी पायी जाती हैं।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँच अजीव द्रव्यों को कालद्रव्य रहित चार द्रव्य ही मानना अजीवतत्त्व संबंधी भूल है। तथा पाँचों अजीव द्रव्यों को जानना ज्ञान की सामर्थ्य है, फिर भी चार द्रव्यों को ही जानना ज्ञान की सामर्थ्य मानी। इसलिये उनके ज्ञान में भी भूल है अर्थात् जीवतत्त्व संबंधी भूल है। काल को नहीं मानते हुये आत्मा सभी पदार्थों का ज्ञाता-दृष्टा है—ऐसा भी नहीं माना, इसलिये पूर्ण निराकुल स्वभाव की प्रतीति भी नहीं हुई—यह संवरतत्त्व संबंधी भूल है। केवलज्ञान सभी द्रव्यों को गुण-पर्याय सहित जानता है, परंतु काल को स्वीकार न करनेवाले मानते हैं कि केवलज्ञान में काल नहीं जाना जाता अर्थात् मोक्षतत्त्व संबंधी भूल है।

यहाँ कोई **प्रश्न** करता है कि—धर्म प्रगट करने के लिये यह सब जानना जरूरी है क्या? थोड़ा भी जानने से राग-द्वेष होता है, तब क्या करें।

समाधान—ज्ञेयों के कारण ज्ञान में राग-द्वेष नहीं होता, जितने ज्ञेय है उतना जानना ज्ञान की सामर्थ्य है।

उस ज्ञानरूपी पर्यायधर्म को धारण करनेवाला आत्मा कैसा है ?

एक आत्मा को जाननेरूप अथवा पाँच द्रव्यों को जाननेरूप सामर्थ्यवाला है। आत्मा अपने सहित सभी छहों द्रव्यों को जाननेरूप सामर्थ्यवाला है।

इसप्रकार से जब जीव द्रव्य-पर्याय को माने, सच्चा श्रद्धान करे, ज्ञान करे, तो धर्म होता है।

जिसप्रकार नर-नारकादि जीवों की अरूपी पर्यायों का उपादान कारण जीव स्वयं है, नर-नारकादिरूप होने की उसकी स्वयं की योग्यता है, जिनका कारण जीव स्वयं ही है। यहाँ नोकर्म का निमित्त भी नहीं है। कर्म के कारण नर-नारकादि पर्यायें होती हों तो कर्म के गुण नर-नारकादि पर्यायों में होने चाहिये। निगोदिया जीवों की वर्तमान स्थिति उनके ही कारण है, कर्म के कारण नहीं। कर्म निमित्त अवश्य है, परंतु निमित्त अर्थात् कर्म के स्पर्शादि गुण जीव में नहीं आते हैं।

उसीप्रकार समय, घड़ी आदि सूचक अवस्थायें हैं, उनका उपादान कारण कालद्रव्य ही होना चाहिये। यदि जीव और पुदगल उनका कारण हो जाये तो जीव और पुद्गल के गुण समय, घड़ी आदि में आ जाने चाहिये, परंतु ऐसा नहीं होता। इसलिये समय, घड़ी आदि का उपादान कारण काल ही है। क्योंकि यह नियम है कि उपादान कारण के अनुसार ही कार्य होता है। आत्मा पुद्गल आदि द्रव्यों के मूलकारण के अनुसार तत् योग्य कार्य होता है। जैसे नीम के वृक्ष में निवोरी ही होती है—केरी (आम) आदि नहीं, गेहूँ के बीज से गेहूँ ही पैदा होता है—बाजरा आदि नहीं; वैसे ही चेतनकारण से जड़कार्य नहीं होता, जड़कारण से चेतनकार्य नहीं होता है। प्रत्येक द्रव्य के कार्य का कारण वह द्रव्य स्वयं ही है।

शिष्य को बोध करानेवाली पर्याय का कारण यदि सर्वज्ञ की वाणी हो तो सभी जीवों को एक जैसा बोध होना चाहिये, क्योंकि वाणी का संयोग तो सभी को समान है, परंतु ऐसा नहीं है। जिसमें समझने की जितनी योग्यता है, उसे उतनी समझ होती है। सभी एक-सा नहीं समझते अर्थात् कोई कम कोई अधिक समझता है, तथा अपने कारण से ही समझता है, अन्य वाणी आदि के कारण नहीं।

कारण कार्य में समानता होती है। कारण कार्य में समानता होने से समय, घड़ी आदि कालसूचक पर्याय का द्रव्य भी कालसूचक पदार्थ होना चाहिये—जीव, पुद्गल द्रव्य नहीं।

शंका—समय, घड़ी आदि पर्याय का उपादान कारण कालद्रव्य नहीं है, अपितु समयरूप पर्याय की उत्पत्ति में मंदगति से चलनेवाला पुद्गल-परमाणु है ?

समाधान—यह ठीक नहीं है। जिसप्रकार कच्चे चावलरूप उपादान कारण से पके चावलरूप पर्याय होती है, अग्नि आदि सहकारी कारणों से नहीं होती है, क्योंकि उसका मूलकारण चावल है, अग्नि आदि नहीं। कच्चे चावल में जो गुण थे, वे पके चावल में भी हैं। जैसे—सफेद आदि रंग, सौंधी-सौंधी गंध, चिकनारूप आदि स्पर्श, मधुर आदि रस।

उसीप्रकार समय, घड़ी आदि कार्य में मंदगति से चलता हुआ पुद्गल-परमाणु उपादान कारण नहीं है। यदि वह उपादान कारण हो जाये तो उसके स्पर्शादि गुण समय, घड़ी आदि में आ जाने चाहिये क्योंकि उपादान कारण के अनुसार कार्य होता है—ऐसा शास्त्र का वचन है। यथा—"कारणानुविधायिनी कार्याणि।" परंतु समय, घड़ी आदि में स्पर्शादि गुण देखने में नहीं आते हैं, अतः समय आदि पर्यायें पुद्गल की नहीं, बल्कि कालद्रव्य की पर्यायें हैं।

कालाणु आदि-अंत रहित है, स्पर्शादि गुण उसमें नहीं है, नित्य है, समय आदि पर्यायों का उपादान कारण है; फिर भी समय, घड़ी आदि का भेद कालाणु में नहीं पड़ता है। इसलिये वह निश्चयकाल है, रत्न की राशि के समान लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है। ऐसे असंख्य प्रदेशों पर असंख्य कालाणु हैं।

तथा समय, घड़ी वगैरह आदि-अंतसहित हैं, विवक्षित व्यवहार में विकल्पसहित हैं और निश्चयकाल की पर्यायस्वरूप व्यवहारकाल है।

काल को स्वयं अपनी खबर नहीं है, आत्मा ही उसको जानता है। इसलिये काल की अपेक्षा आत्मा सूक्ष्म एवं संवेदनशील है। असंख्य कालाणु ज्ञेय हैं और ज्ञान में निमित्त हैं, अतः काल का भी यथार्थ ज्ञान करना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि जीव काललब्धि के अनुसार अनंतसुख का पात्र होता है अर्थात् अपने स्वकाल में मुक्ति प्राप्त करता है। अभी इस समय मुक्ति नहीं होती है—ऐसा शास्त्र का वचन है। फिर भी विशुद्धज्ञानदर्शन आदि स्वभाव का धारक जो अपना परमात्मस्वरूप है, उसका सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरण, तथा संपूर्ण इच्छाओं के अभाव हेतु की गयी तपश्चरणरूप आराधना जीव को अनंत सुख की प्राप्ति में उपादान कारण है, ऐसा जानना

चाहिये। कालद्रव्य उपादान कारण नहीं है, क्योंकि काल के गुण जीव में नहीं आते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना के गुण जीव में आते हैं, इसलिये वह उपादान कारण है। जो जीव स्वयं आराधना कर मुक्ति पाते हैं, उनको काल निमित्त है—उपादान कारण नहीं, इसलिये काल का आश्रय छोड़नेयोग्य है। निमित्त बिल्कुल भी मदद नहीं करता है, इसलिये उस पर से दृष्टि छुड़ाने के लिये उसको (काल को) हेय कहा है। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- राग-द्वेष को जीव की पर्याय कहा है और फिर उसी को निश्चय से पुद्गल का परिणाम भी कहा। अब हम क्या निश्चय करें?

उत्तर- राग-द्वेष है तो जीव का ही परिणाम, किंतु वह पुद्गल के लक्ष्य से होता होने से और जीव का स्वभावभाव न होने से तथा स्वभावदृष्टि कराने के प्रयोजन से, पुद्गल का कहा गया है। क्योंकि निमित्ताधीन होनेवाले भाव को निमित्त का भाव है, पुद्गल का भाव है—ऐसा कहने में आता है।

प्रश्न- प्रथम भूमिका में जिज्ञासु जीव राग-द्वेष के भाव को अपना माने अथवा पुद्गल का भाव है—ऐसी श्रद्धा करे?

उत्तर- जिज्ञासु जीव रागादिभाव अपने में अपने अपराध से होते हैं-ऐसा जानकर, श्रद्धा में से निकाल दे; अर्थात् ऐसी श्रद्धा करे कि यह रागादि के परिणाम मेरे त्रिकाली स्वभाव में नहीं हैं।

प्रश्न- जो शुभ-अशुभ परिणाम में भेद मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है; तो हम आत्मा की

बात सुनें—चर्चा करें, अथवा दुकान पर बैठकर व्यापार-धन्धा करें; यह दोनों समान ही हैं न ?

उत्तर- शुभ-अशुभ परिणाम में व्यवहार से भेद है। व्यापार में तीव्रकषाय है, आत्म-चर्चा सुनने में मंदकषाय है, इसलिये व्यवहार से भेद है; किंतु इन शुभाशुभ दोनों का लक्ष्य पर की तरफ ही है, अत: बंध का कारण है। परमार्थ से इन दोनों में कोई भेद नहीं है—ऐसा बतलाकर शुभ में से हितबुद्धि छुड़ाकर स्वद्रव्य का लक्ष्य कराया है।

प्रश्न- क्या द्रव्यलिंगी शुद्धात्मा का चिंतवन नहीं करता ?

उत्तर- शुद्धात्मा का चिंतवन तो करता है, परंतु आत्ममय होकर नहीं करता-ऐसा जानना।

प्रश्न- द्रव्यलिंगी इतनी कठोर क्रियायें करता है, शास्त्राध्ययन भी गंभीर करता है, तथापि इन सबको स्थूल क्यों कहा ?

उत्तर- द्रव्यलिंगी क्षयोपशम की धारणा से और बाह्यत्याग से यह सब-कुछ करता है। बाह्य में उसके वैराग्य भी विशेष दिखलाई पड़ता है। हजारों रानियाँ और महान वैभव —राजपाट भी उसने छोड़ दिया है, फिर भी उसका वैराग्य सच्चा नहीं है। पुण्य-पाप के परिणाम से अंतरंग में विरक्ति उसके हुई नहीं है। स्वभाव महाप्रभु है, अनंतानंत गुणों का समुद्र आनंद से परिपूर्ण है, उसकी महिमा अभी तक उसे अंदर से आयी नहीं है।

प्रश्न- तत्त्वचर्चा-स्वाध्याय में रहनेवाले सर्वार्थसिद्धि के देव की अपेक्षा पाँचवें गुणस्थानवर्ती पशु के शांति विशेष होती है क्या ?

उत्तर- पाँचवें गुणस्थानवाले पशु के दो कषाय चौकड़ी का अभाव होने से देवों की अपेक्षा शान्ति अधिक होती है। चौथे गुणस्थानवाला देव शुभ में हो तो भी शांति कम और पाँचवें वाला पशु या मनुष्य अशुभ में हो तो भी उसे शांति अधिक होती है।

प्रश्न- स्वानुभूति कैसे करना ?

उत्तर- राग की वृत्ति पर की तरफ जाती है, उसका लक्ष्य छोड़कर स्वसन्मुख झुके तो अनुभूति हो।

प्रश्न- विषय-कषाय की सतत् विडम्बना से छूटने का साधन क्या ?

उत्तर- विषय-कषाय का प्रेम छोड़ना, रुचि छोड़ना, विषय-कषाय के राग से चैतन्य का भेदज्ञान करना, वह विषय-कषाय की सतत् विडम्बना से छूटने का साधन है।

प्रश्न- इस तत्त्व के संस्कार अगले भव में भी बने रहें—ऐसा कोई उपाय है क्या ?

उत्तर– हाँ, तत्त्व का पक्का निर्णय करे तो अगले भव में वह संस्कार काम आ सकता है।

प्रश्न– एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता—इस सिद्धांत में यह बात तो समझ में आती है कि एक जीव दूसरे जीव का कुछ नहीं करता, परंतु एक परमाणु दूसरे परमाणु का कुछ नहीं करता—यह बात जँचती नहीं।

उत्तर– एक परमाणु स्वतंत्र है, वह भी स्वयं कर्ता होकर अपने कार्य को करता है, दूसरे परमाणु का उसमें अत्यंत अभाव है। यदि इससे आगे बढ़कर थोड़ा सूक्ष्म विचार करें तो पुद्गलद्रव्य की पर्याय स्वयं से स्वतंत्र होती है, द्रव्य भी उसका कारण नहीं है। भाई! वीतराग की बात बहुत सूक्ष्म है।

प्रश्न– घड़ा कुंभकार तो नहीं बनाता, तो क्या मृतिका से भी नहीं बनता?

उत्तर– घड़ा घड़े की पर्याय के षट्कारक से स्वतंत्रतया बनता है, मिट्टीद्रव्य से भी नहीं; मिट्टीद्रव्य तो सदाकाल विद्यमान है। घड़ा, रामपात्र आदि पर्यायें नयी-नयी उत्पन्न होती हैं और वे पर्यायें अपने षट्कारक से स्वतंत्र ही होती हैं।

प्रश्न– परद्रव्य का कार्य भले ही नहीं कर सकते, किंतु अनासक्तिभाव से पर को सुखी करें—अनुकूलता प्रदान करें तो?

उत्तर– 'पर को मैं सुखी कर सकता हूँ—अनुकूलता प्रदान कर सकता हूँ', यह दृष्टि ही मिथ्यात्वरूप भ्रम है। 'पर को सुखी कर सकूँ, पर को लाभ करा दूँ'—यह कर्ताबुद्धि का अभिमान है, अनासक्ति नहीं।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन होने से पहले किसप्रकार के विचार होते हैं कि जिनका अभाव करके सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर– किसप्रकार के विचार चलते हैं इसका कोई नियम नहीं है। तत्त्व के किसी भी प्रकार के विचार हो सकते हैं, जिनका अभाव करके सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले की व्यवहार योग्यता कैसी होती है?

उत्तर– निमित्त से अथवा राग से सम्यग्दर्शन होता नहीं, पर्याय-भेद के आश्रय से भी होता नहीं; इस तरफ अंदर में ढलने से ही सम्यग्दर्शन होता है—अन्य किसी विधि से नहीं; इसप्रकार की दृढ़ श्रद्धा-ज्ञान होना, वही सम्यग्दर्शन होनेवाले की योग्यता है।

प्रश्न– बुद्धिपूर्वक तत्त्वाभ्यास करने पर भी किसी को सम्यग्दर्शन होता है, किसी को नहीं—ऐसा क्यों?

उत्तर– जो जीव तत्त्वनिर्णय का यथार्थ अभ्यास करते हैं उन्हें तो सम्यग्दर्शन होता ही है, किंतु जो जीव तत्त्व का अभ्यास करने पर भी किसी न किसी स्थान पर अटक जाते हैं तो उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं होता। शास्त्रानुसार अभ्यास कर लेने पर भी अटकने के अनेक प्रकार हैं, उनमें से कहीं भी अटक जाए तो सम्यग्दर्शन उपलब्ध नहीं होता। चढ़ने का एक ही प्रकार है। जो सच्चा प्रयत्न रुचिपूर्वक करता है, उसके ढ़ीले पड़ने की बात ही नहीं, उसका बल तो इतना प्रबल होता है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करके ही रहता है। एक कथानक आता है कि एक बार अनेक जहाज समुद्र में डूब गये, केवल एक जहाज बच गया, तब किसी पुण्यवान ने कहा कि यह बचनेवाला जहाज मेरा ही है, मेरा जहाज डूब नहीं सकता। इसीप्रकार जो तिरनेवाले जीव हैं, उनमें मैं ही हूँ—ऐसा उसे अंदर से लगता है।

प्रश्न– 'घटघट अंतर जिन बसै, घटघट अंतर जैन'—इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर– प्रत्येक आत्मा शक्तिरूप से तो 'जिन' ही है। घट-घट अंतर जैन—अर्थात् गृहस्थाश्रम में रहते हुए चक्रवर्ती के ९६००० रानियाँ होती हैं, इंद्र के करोड़ों अप्सरायें होती हैं, अनेक प्रकार के वैभव बाह्य में होते हैं; तथापि सम्यग्दृष्टि अंदर में जैन है, राग से भिन्न पड़ा होने से सच्चा जैन है। और जिसने बाहर से हजारों स्त्रियाँ छोड़ दी हों, त्यागी बन गया हो, किंतु राग से भिन्न हुआ न हो तो वह वास्तविक जैन नहीं है। उसने राग को मंद तो किया है, किंतु राग से भिन्नत्व अनुभव नहीं किया, इसलिए जैन नहीं है।

प्रश्न– ज्ञानरहित वैराग्य तो रुँधा हुआ कषाय है ?

उत्तर– हाँ, आत्मा के ज्ञान-भानरहित कषाय की मंदता के वैराग्यरूप परिणाम में कषाय दबा हुआ है, कषाय टला नहीं है। जब यह दबा हुआ—रुँधा हुआ कषाय प्रस्फुटित होगा, तभी नरक-निगोद में चला जायेगा। भले ही बाह्य में राजपाट-स्त्री-पुत्रादि छोड़े हों; तथापि आत्मभान बिना कषाय टलता नहीं, दबता है; और कालक्रम से प्रस्फुटित होकर तीव्रकषाय के रूप में प्रगट होता है।

प्रश्न– लोक छह द्रव्यस्वरूप है, उसमें जीव सप्तम द्रव्य हो जाता है क्या ?

उत्तर– लोक है तो छह द्रव्यस्वरूप ही, किंतु वह ज्ञेय होने से व्यक्त है और उसको जाननेवाला जीव उससे भिन्न है, अत: इसी अपेक्षा से उसे सप्तम द्रव्य कहा है।

समाचार दर्शन

पूज्य स्वामीजी का विहार-कार्यक्रम

सोनगढ़ :- परम पूज्य स्वामीजी नैरोबी (केनिया-पूर्वी अफ्रीका) में जैन धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना करके सानंद आ गये हैं। इस समय समयसार गाथा ३०८-३११ पर अंतर्मुखी पुरुषार्थप्रेरक प्रवचन हो रहे हैं। विदेश में धर्मध्वज लहराने के बाद देश में भी जैनधर्म प्रभावना हेतु उनका विहार-कार्यक्रम निम्नानुसार निश्चित हुआ है:—

९ फरवरी - सोनगढ़ से मंगल प्रस्थान, १० फरवरी - अहमदाबाद, ११ से १४ फरवरी - पालेज, १४ से १७ फरवरी - सूरत, १८ से २८ फरवरी - बड़ौदा (श्री दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव), २९ फरवरी से ३ मार्च - अहमदाबाद (श्री दिगम्बर जिनमंदिर शिलान्यास महोत्सव), ४ से १४ मार्च - वढ़वाण, सुरेन्द्रनगर और जोरावरनगर, १४ से २२ मार्च - लीमणी, राणपुर और गटड़ा, २३ मार्च से १ अप्रेल - सोनगढ़, २ से १६ अप्रेल - मलाड़ (बम्बई), (१६ अप्रेल को ९१वाँ जन्म जयंती महोत्सव), १७ से २२ अप्रेल - मद्रास, २३ से २८ अप्रेल - बैंगलोर, २९ अप्रेल से १२ मई - राजकोट, १३ मई को सोनगढ़ आगमन।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

बड़ौदा (गुजरात) :- दिनांक १८-२-८० से २८-२-८० तक पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में श्री जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल आदि अनेक विद्वानों का समागम भी प्राप्त होगा। घाटकोपर, बम्बई की मंडली द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी होगा। साधर्मी पधारकर धर्म लाभ लें। विस्तृत समाचार अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

नैरोबी (केनिया-पूर्वी अफ्रीका) में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह सानंद संपन्न

नैरोबी (केनिया) :- अफ्रीका महाद्वीप के केनिया देश की राजधानी नैरोबी में दिनांक २८-१२-७९ से १९-१-८० तक विविध आयोजनों के साथ श्रीमद्जिनेन्द्र देवाधिदेव पंचकल्याणक एवं जिनमंदिर वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद संपन्न हुए।

पूज्य श्री कानजीस्वामी २ जनवरी को ही पधार गये थे। अपार जन-समूह ने आपकी अगवानी की, स्वागत किया और भारी भीड़ के साथ शोभायात्रा के रूप में आपको कार्यक्रम स्थल तक ले जाया गया। प्रतिदिन स्वामीजी के प्रात: व मध्याह्न में दो प्रवचन एवं रात्रि में ४५ मिनिट तत्त्वचर्चा का कार्यक्रम चलता था। चर्चा का संचालन डॉ० चन्दूभाई राजकोटवाले करते थे।

पूज्य गुरुदेव के भावभीने आध्यात्मिक प्रवचनों से जनता काफी लाभान्वित हुई। आयोजन में सम्मिलित हुए भारतीय मेहमानों सहित हजारों भाई-बहिनों ने प्रतिदिन सभी कार्यक्रमों में सम्मिलित होकर भरपूर लाभ लिया। पंडित बाबूभाई मेहता के सफल संयोजन में इस उत्सव ने सभी पुराने रिकार्ड तोड़ दिये। बोलियों के माध्यम से पैंतालीस लाख बारह हजार रुपयों की आय हुई। पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में जब श्री बाबूभाई बोली बोलने खड़े होते थे तो उस समय मानों रुपयों की बरसात होती थी और १५ मिनिट में ही लाखों रुपये की बोलियाँ हो जाती थीं। लोगों में अभूतपूर्व उत्साह दिखाई दिया।

पंचकल्याणक के अवसर पर जैसे जुलूस निकले—नैरोबी के इतिहास में वे भी अभूतपूर्व थे।

पच्चीस दिन लगातार चलनेवाले डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचनों ने भी अपनी अमिट छाप छोड़ी। दशलक्षणधर्म, क्रमबद्धपर्याय, अहिंसा, भेद-विज्ञान, और पंचकल्याणक प्रसंगों पर हुए उनके व्याख्यान खूब सराहे गये। रेडियो स्टेशन 'वायस ऑफ केनिया' से भी डॉ० भारिल्लजी के जैनदर्शन पर व्याख्यान ब्राडकास्ट हुआ। आदरणीय विद्वद्वर्य बाबूभाईजी, डॉ० चन्दूभाई राजकोट, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित उत्तमचंदजी सिवनी एवं पंडित हीराभाई, बम्बई के भी प्रवचन समय-समय पर आयोजित किये गये। घाटकोपर, बम्बई की भजन-मंडली ने विभिनन रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये, जिनकी सभी ने सराहना की।

उक्त विद्वद्वर्ग के अतिरिक्त भारत से पधारे जो विशेष अतिथि थे—उनमें श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी खुरई, स० सिं० धन्यकुमारजी कटनी, सेठ सुमेरचंदजी जबलपुर, सेठ रतिभाई घिया राजकोट, सेठ भभूतमलजी भंडारी बैंगलोर, सेठ मीठाभाई जुगराजजी बम्बई, सेठ शांतिलालजी भायाणी मद्रास, श्री चन्द्रैयाजी मैसूर, सेठ महेन्द्रकमारजी सेठी जयपुर, श्री हीरालालजी काला भावनगर, चौ० फूलचन्दजी बम्बई, श्री सुमेरचंदजी अशोकनगर, श्री

हरकचंदजी बिलाला अशोकनगर, सेठ रतनलालजी गंगवाल इंदौर, श्री शांतिलालजी पाटनी रतलाम, श्री सोहनलालजी जैन जयपुर, पंडित सेठ जवाहरलालजी विदिशा, श्री गट्टूलालजी गुना, श्री जमनाप्रसादजी एडवोकेट गुना, श्री स्वरूपचंदजी एडवोकेट खंडवा, डॉ० कपूरचंदजी सिवनी, श्री प्रबोधचंदजी एडवोकेट छिंदवाड़ा, श्री देवेन्द्रकुमारजी पाटनी छिंदवाडा, डॉ० ज्ञानचंदजी भिलाई, श्री छगनलालजी सेठी खातेगाँव, श्री चिमनभाई ठाकरसी मोदी बम्बई, श्री माणकचंदजी पाटोदी लुहारदा आदि मुख्य हैं। इसप्रकार वहाँ भारत के सभी प्रदेशों का व समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व था।

भारतीय दूतावास के उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) श्री हक्सर सा० भी उत्सव में सम्मिलित हुए। सभी कार्यक्रमों में वहाँ की श्वेताम्बर समाज का भी पूरा-पूरा सहयोग मिला। प्रतिष्ठा का संपूर्ण कार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवालों द्वारा संपन्न कराया गया। सहयोगी प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी श्रीचंदजी सोनगढ़ एवं ब्रह्मचारी पंडित जतीशभाई शास्त्री जयपुर थे।

अंत में नैरोबी समाज ने गुरुदेवश्री का अभिनंदन करते हुए उन्हें अभिनंदन-पत्र समर्पित किया तथा वहाँ उपस्थित भारतीय जैन समाज द्वारा नैरोबी मुमुक्षु मंडल का हार्दिक अभिनंदन किया गया।

अभिनंदन-समारोह के अवसर पर समस्त आगंतुक भारतवासियों की ओर से बोलते हुए सवाईसिंघई धन्यकुमारजी कटनीवालों ने कहा :—

''परमपूज्य स्वामीजी के प्रताप से यह धरती धन्य हो गई। इतिहास के पृष्ठों को देखिए तो ऐसा महान कार्य उन पृष्ठों में देखने को नहीं मिलेगा कि हमारे भारत में ही नहीं, अपितु पूर्वी अफ्रीका में भी स्वामीजी के प्रताप से आत्मधर्म का डंका बज रहा है। ऐसे महापुरुष को युगांतकारी कहने में मैं गौरव का अनुभव करता हूँ।''

मैंने अनेक धार्मिक सभाऐं देखीं, अनेक साधुओं का समागम किया; किंतु मुझे ऐसा महान पुरुष कहीं नहीं दिखाई दिया जो स्वयं मोक्षमार्ग में क्रीड़ा करते हुए, अपनी आत्मा में अवगाहन करते हुए हमें हथेली पर आत्मा दिखाते हैं और कहते हैं कि तुम्हारी आत्मा तो ज्ञान और आनंद का पिण्ड है।

करोड़पति, अरबपति शास्त्रसभा में बैठते हैं और गुरुदेव की वाणी सुनकर उनकी जड़ें ढीली हो गई हैं, व्यामोह ढीले हो गए हैं।

नैरोबी मुमुक्षु मंडल ने भारतवासियों के आगमन पर अभूतपूर्व आतिथ्य सत्कार किया। किसी को कुछ भी असुविधा नहीं हुई। हम ऐसी सेवा नहीं कर सकते।''

इस उत्सव में मात्र तात्कालिक प्रभावना के ही नहीं, स्थायी लाभ के भी बहुत कार्य हुए हैं:—

वीतराग-विज्ञान पाठमाला की स्थापना—इस अवसर पर हुआ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है—वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना। इसके लिए एक लाख रुपये का ध्रुवफंड तत्काल हो गया और अध्यापन व्यवस्था भी तत्काल हो गयी। पंडित श्री देवसीभाई राजकोटवाले स्थायीरूप से अध्यापन कार्य के लिये वहीं रह गये हैं।

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की शाखा स्थापित

इस समारोह में जो दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है वह है अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा का गठन। युवा फैडरेशन के केंद्रीय अध्यक्ष ब्रह्मचारी पंडित जतीशभाई इस उत्सव की तैयारी के लिये ब्रह्मचारी श्रीचंदजी सोनगढ़वालों के साथ दिनांक १०-१२-७९ को ही नैरोबी पहुँच गये थे। आप दोनों के मार्गदर्शन में ही इस महोत्सव की संपूर्ण तैयारियाँ संपन्न हुईं। उन्होंने वहाँ पर एक माह तक लगातार वीतराग-विज्ञान पाठशाला भी चलाई एवं लगभग ५० विद्यार्थियों की परीक्षाऐं भी लीं। पुरस्कार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के हाथ से दिलाया गया। उनके ही सद्प्रयत्नों से युवा फैडरेशन की शाखा गठित हुई तथा ६० से अधिक सदस्य बनाये गये। कार्यकारिणी का गठन भी सर्वसम्मति से किया गया। युवा फैडरेशन के सभी सदस्यों ने तत्त्वज्ञान व सदाचारमय नैतिक जीवन के प्रचार-प्रसार का संकल्प लिया।

साहित्य बिक्री :- इस अवसर पर दस हजार रुपये से भी अधिक का हिंदी-गुजराती का सत्साहित्य वहाँ गया था। शास्त्रों के अतिरिक्त अंग्रेजी की भी तत्काल प्रकाशित हुई ४ पुस्तकें गईं थीं—जिनमें लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, अपने को पहचानिये, तीर्थंकर भगवान महावीर व जैन बालपोथी के अंग्रेजी अनुवाद थे। प्राय: सभी साहित्य हाथोंहाथ बिक गया।

बोलती फिल्म (वीडियो टेप) :- पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के दृश्यों, डॉ० भारिल्लजी आदि के व्याख्यानों एवं भजनमंडली के कार्यक्रमों पर लगभग ८२ घंटे की बोलती फिल्म (वीडियो टेप) तैयार की गयी है—जिसका उपयोग देश-विदेश में तत्त्वप्रचार के लिये तो होगा ही; साथ ही वह ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु भी बन गई है।

अन्य शहरों में भी धर्मप्रभावना

थिक्का :- नैरोबी से ३० किलोमीटर दूर थिक्का नामक उद्योग-नगरी है। वहाँ ८० घर श्वेताम्बर जैन भाईयों के रहते हैं। उनके आग्रहपूर्ण आमंत्रण पर पूज्य स्वामीजी ससंघ तारीख २०-१-८० को भी वहाँ पधारे। वहाँ उनके दो प्रवचन हुए।

मुम्बासा :- नैरोबी से ३०० किलोमीटर दूर मुम्बासा नामक शहर है, जो केनिया का एकमात्र बन्दरगाह है। वहाँ के मुमुक्षु भगवानजीभाई के अति आग्रह पर स्वामीजी एक दिन के लिये वहाँ भी पधारे।

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन द्वारा पंच-साप्ताहिक धार्मिक शिक्षण-शिविर संपन्न

जयपुर :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा गत वर्ष 'अनोखा शिविर' नाम से सप्त दिवसीय धार्मिक शिक्षण-कक्षायें संपन्न की गयीं थीं, जिसमें ३९० छात्रों ने शिक्षा प्राप्त की थी।

इस आशातीत सफलता से प्रोत्साहित होकर इस वर्ष भी उक्त महाविद्यालय के छात्रों द्वारा दिनांक १ जनवरी, ८० से ५ फरवरी, ८० तक जयपुर नगर के जैन समाज द्वारा संचालित १ कॉलेज, ३ हायर सैकेन्ड्री एवं ८ मिडिल व प्राइमरी स्कूलों तथा अन्य ४ स्थानों पर वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड के पाठ्यक्रम में निर्धारित धार्मिक शिक्षण की ३५ दिवसीय कक्षायें सफलतापूर्वक चलाई गयीं। इन कक्षाओं में बालबोध एवं वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं का अध्ययन कराया गया। पश्चात् ६ फरवरी को वी०वि०वि० परीक्षाबोर्ड की शीतकालीन वार्षिक परीक्षाओं के साथ ही इन छात्रों की परीक्षा भी ली गयी, जिसका परिणाम बाद में घोषित किया जायेगा। तत्त्वज्ञान व सदाचार की शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करने हेतु एक विशाल समारोह में व्युत्पन्न छात्रों को पुरस्कृत भी किया जायेगा।

इस शिविर में १३ स्थानों पर कक्षायें संचालित की गयीं, जिनमें कुल ८९० छात्रों ने तत्त्वज्ञान व सदाचार की शिक्षा प्राप्त की।

जिन कॉलेजों / स्कूलों में कक्षायें चलायी गयीं, वे निम्न हैं:—

(१) श्री दि० जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, (२) प्रेमशांति पब्लिक स्कूल, (३) प्रदीप शिक्षण केंद्र, (४) पद्मावती कन्या विद्यालय, (५) बाल शिक्षा मंदिर, (६) राज विद्यालय, (७) ज्ञान विद्यालय, (८) नवरंग बाल विद्यालय, (९) पार्श्वनाथ विद्यालय,

(१०) आदर्शनगर पाठशाला, (११) लालकोठी पाठशाला, (१२) वर्द्धमान भवन पाठशाला एवं (१३) पंडित टोडरमल स्मारक भवन पाठशाला।

इस शिक्षण की आवश्यकता और उपयोगिता को देखते हुए कई विद्यालयों ने इसे नियमित पाठ्यक्रम के रूप में अपनाने की इच्छा व्यक्त की।

इन कक्षाओं के संचालन के लिये विद्यालयों के प्राचार्यों ने अपने-अपने समय-चक्र के प्रत्येक पीरियड में से ५-५ मिनिट कम करके एक पीरियड धार्मिक शिक्षण के लिये देकर जो सुविधा प्रदान की है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही जिन अध्यापकों ने अध्यापन-कार्य किया उनको भी मैं बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखाओं द्वारा भी अपने-अपने नगर में इसी प्रकार के आयोजनों द्वारा नैतिक शिक्षा का प्रसार करके बालकों में सदाचार के संस्कार डाले जा सकते हैं। सभी शाखाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने-अपने नगर में इस प्रकार के आयोजन करें।

—शिखरचंद जैन
कार्यालय मंत्री, अ० भा० जैन युवा फैडरेशन

---

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।

कोटा युवा फैडरेशन का अधिवेशन अब १५-१६ मार्च को

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की कोटा शाखा का वार्षिक अधिवेशन अब २-३ फरवरी के स्थान पर १५ एवं १६ मार्च ८० को होगा। इस अवसर पर राजस्थान के स्वास्थ्यमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन, प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, दिगम्बर जैन महासमिति के महामंत्री श्री सुकुमारचंदजी जैन आदि अनेक गणमान्य महानुभाव पधार रहे हैं। साहू अशोककुमारजी जैन एवं श्री नेमीचंदजी जैन [साहू जैन ट्रस्ट] के भी पधारने की संभावना है। युवा फैडरेशन की सभी शाखाओं के अध्यक्ष तथा मंत्रियों को भी आमंत्रित किया गया है।

— राजेश सोगानी, मंत्री

शिक्षण-शिविर संपन्न

रिसोड़ (महाराष्ट्र) :-यहाँ दिनांक २२-१२-७९ से २६-१२-७९ तक वीतराग-विज्ञान शिक्षण शिविर आयोजित किया गया। शिविर में डॉ० विजयलक्ष्मी पांगल कोल्हापुर ने महिलाओं की कक्षा तथा श्री हरकचंदजी गंगवाल औरंगाबाद ने बालकों की कक्षाऐं लीं। डॉ० प्रियंकर जैन बम्बई एवं पंडित नेमीचंदभाई पाटनी कन्नड़ के प्रवचनों का आयोजन किया गया। शीतकालीन परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र वितरित किये गये। विशेष-योग्यता प्राप्त छात्रों को पुस्तकें भेंट की गईं। **— विजय बेलोकर**

जयपुर (राज०) :- स्थानीय किशनपोल बाजार में श्री संजयकुमार बंसल के संयोजकत्व में अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गयी। शाखा शुभारंभ के अवसर पर २७ जनवरी को हुई सभा को डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने संबोधित किया। फैडरेशन के महामंत्री श्री अखिल बंसल ने फैडरेशन की गतिविधियों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला।

कलमनुरी (महा०) :-दिनांक ४-१-८० को तीन दिन के लिये डॉ० विजयलक्ष्मी पांगल कोल्हापुर एवं श्री हरकचंदजी गंगवाल औरंगाबाद यहाँ पधारे। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर वीतराग विज्ञान पाठशाला एवं महिमा मंडल की स्थापना की गई। **— स्नेहलताभाई रामढ़वे**

खड़ैरी (म०प्र०) :- दिनांक २०-१२-७९ से २२-१२-७९ तक अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की उपाध्यक्षा श्रीमती कुसुमलता पाटनी अनेक मुमुक्षुओं सहित पधारीं। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से जैन एवं जैनेतर समाज लाभान्वित हुई। **— पंडित गोविंददास**

गुना (म०प्र०) :- दिनांक १५-१-८० को स्थानीय चौधरी मोहल्ला में जैन जागृति मंडल की ओर से वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गई। **— विनोद जैन**

बीना (म०प्र०) :- १ जनवरी से ७ जनवरी तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले पधारे। तीनों समय आपकी कक्षाऐं आयोजित की गईं, जिससे विशेष धर्मप्रभावना हुई। **— बाबूलाल जैन**

मुंगावली (म०प्र०) :- १२ जनवरी से १७ जनवरी तक श्री कुंदनलालजी हकीम द्वारा सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन किया गया। विधान की कार्यविधि पंडित जमुनाप्रसादजी शास्त्री द्वारा संपन्न की गई। पंडित झम्मकलालजी सोनगढ़ के १२ दिन तक परमात्मप्रकाश ग्रंथ पर आध्यात्मिक प्रवचन भी हुए। समाज में अच्छी प्रभावना हुई।

— शकुन्तला जैन

आवश्यकता है :- एक ऐसे अध्यापक की जो स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला में धर्माध्यापन कर सके। वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जायेगी। आवास फ्री, वेतन योग्यतानुसार।

— नरेशचंद जैन, मु०पो० गोरमी, जिला भिंड (म०प्र०)

'क्रमबद्धपर्याय' पर महत्त्वपूर्ण अभिमत

डॉ० पन्नालालजी जैन, साहित्याचार्य, सागर (म०प्र०)

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से द्रव्य परिणमनशील है। द्रव्य का यह परिणमन सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकता है। यद्यपि द्रव्य का परिणमन द्रव्य के स्वाधीन है और सर्वज्ञ के ज्ञान का परिणमन सर्वज्ञ के स्वाधीन है; तथापि यह निश्चित है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में प्रत्येक द्रव्य की त्रिकालवर्ती पर्यायें झलकती हैं, अतः सर्वज्ञता को स्वीकृत करनेवाले के सामने पर्याय की क्रमबद्धता स्वतः सिद्ध है।

पर्याय की क्रमबद्धता स्वीकृत करने में न नियतवाद का एकांत आया है, और न पुरुषार्थवाद का अभाव होता है। नियतवाद का लक्ष्य जहाँ अकर्मण्यता और स्वेच्छाचारिता है, वहाँ पर्याय की क्रमबद्धता का लक्ष्य कर्तृत्ववाद के अहंकार से दूर रहना है। कार्य की सिद्धि जिस निमित्त और जिस प्रकार के पुरुषार्थ से होनी है, वह उसी निमित्त और उसी पुरुषार्थ से होती है। सर्वज्ञ के ज्ञान में वह निमित्त और पुरुषार्थ का वह प्रकार भी झलकता है। विवाद वहाँ उपस्थित होता है, जहाँ हम कार्य की भवितव्यता सर्वज्ञ के ज्ञान के अनुसार स्वीकृत करते हैं और पुरुषार्थ को अपने छद्मस्थ के ज्ञान का विषय बनाते हैं।

कालनय और अकालनय की चर्चा तथा उदय और उदीरणा का प्रकरण श्रुतज्ञान का विकल्प है। जिस जीव के मोक्ष जाने का समय आ जाता है वह नित्यनिगोद से निकलकर कर्मभूमि का मनुष्य होकर उसी पर्याय से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। द्रव्यादि स्वचतुष्टय के अनुसार पदार्थ का परिणमन अनादिकाल से चला आ रहा है और अनंत काल तक चलता रहेगा। इसे परिवर्तित करने का अहंकार छूट जाए यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। **पर्यायों की क्रमबद्धता मुझे इष्ट है। मात्र विरोध के लिये विरोध करना अच्छा नहीं है।**

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, प्राचार्य, जैन इंटर कॉलेज, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

'क्रमनियमितपर्याय' जैनदर्शन का एक बहुचर्चित सिद्धांत है। मुख्यत: आज के युग में इसके पक्ष और विपक्ष में खूब चर्चा होती रही है। इस विषय पर विद्वज्जनों के मतभेद किसी से छिपे नहीं हैं। मुझे खुशी है कि इस संदर्भ में इतने विस्तार से सभी पहलुओं का स्पर्श करते हुए तथा सामान्य पाठक की समझ में आ सकने योग्य सीधी-सरल भाषा में पहली बार ही लिखा गया है। यों तो दार्शनिक गुत्थियाँ प्राय: गूढ़ एवं शुष्क हुआ करती हैं, किंतु डॉ० भारिल्लजी उन्हें रुचिकर एवं सरस बनाकर प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। मैं उनके इस कमाल का सादर अभिवादन करता हूँ।

जो लोग इस सिद्धांत से अब भी मतभेद रखते हैं, इस ग्रंथ के प्रकाशन से उन्हें भी एक अवसर मिला है कि वे अथाह आगम-सिंधु में पुन:-पुन: गोते लगायें और नये-नये मोती ढूंढ़कर लायें।

मुझे पूर्ण आशा है कि तत्त्व-चिंतन और चर्चा के इस स्वस्थ एवं संतुलित प्रयास को संपूर्ण जैनजगत में निश्चय ही सराहा जाएगा। अपनी ओर से विद्वान लेखक को हार्दिक साधुवाद प्रेषित करता हूँ।

अब आत्मधर्म ९) रुपये में

जैसा कि आपको पूर्व में सूचित किया गया था कि आत्मधर्म का वार्षिक शुल्क नौ रुपए किया जा रहा है। अब कृपया नौ रुपया शुल्क भेजकर सहयोग प्रदान करें। इस माह से छह रुपये स्वीकार नहीं किये जावेंगे।

— प्रबंध संपादक

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें:—

(१) विलंब से प्राप्त 'भेंट कूपन' वाले सदस्यों को भी भेंट पुस्तक 'धर्म के दशलक्षण' भेजी जा चुकी है। अब भेंट पुस्तक समाप्त हो चुकी है, अत: मांगने का कष्ट न करें।

(२) जिन ग्राहकों का जब चंदा समाप्त होता है, उन्हें हम सूचना भेजते हैं। सूचना प्राप्त होने पर ही आप अपना चंद भेजें, अन्यथा व्यवस्था में असुविधा होती है तथा आपको भी डबल अंक पहुँच सकता है।

(३) जिन ग्राहकों को २० तारीख तक आत्मधर्म न पहुँचे, वे उक्त तिथि के पश्चात् पत्र लिखकर पुन: अंक मंगा सकते हैं। जब तक उक्त अंक की प्रतियाँ उपलब्ध होंगी, हम भेज देंगे।

(४) पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें।

(५) जो मुमुक्षु मंडल के भाई भेंट की पुस्तकें ले गये थे, उनमें से जिन्होंने आत्मधर्म कार्यालय को भेंट के कूपन नहीं भेजें हों वे कृपया भेंट के कूपन भेजें। अन्यथा पुस्तकों की राशि भेजकर अपना हिसाब बराबर करने का कष्ट करें।

इस वर्ष भी सम्मेदशिखरजी में शिविर नहीं होगा

श्री पंडित बाबूभाई मेहता और डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के बड़ौदा पंचकल्याणक में व्यस्त होने से शिखरजी में फाल्गुनी अष्टाह्निका में उनके तत्त्वावधान में होनेवाला शिविर इस वर्ष नहीं होगा। इस संदर्भ में हमारे पास बहुत से पत्र आ रहे हैं। प्रत्येक को व्यक्तिगत उत्तर देना संभव नहीं है। वे इस सूचना के आधार पर ही अपना कार्यक्रम बनावें। **— व्यवस्थापक**

प्रशिक्षण शिविर महाराष्ट्र में

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित ग्रीष्मकालीन चौदहवाँ प्रशिक्षण शिविर दिनांक १७ मई से ५ जून तक कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के महामंत्री श्री धन्यकुमारजी बेलोकर आदि महानुभावों के अत्यंत आग्रह पर महाराष्ट्र के विदर्भक्षेत्र में होना निश्चित हुआ है। इसकी विस्तृत जानकारी आगामी अंक में दी जावेगी। **— मंत्री**

एक अत्यंत आवश्यक स्पष्टीकरण

इंदौर से प्रकाशित प्रमुख दैनिक पत्र नई दुनियाँ के १३ जनवरी, १९८० के अंक में 'नैरोबी में जिनमंदिर का प्रतिष्ठा समारोह' शीर्षक से एक समाचार प्रकाशित हुआ है। जिसमें वहाँ की प्रभावना के समाचार के साथ पूज्यश्री कानजीस्वामी के महत्त्वपूर्ण योगदान की चर्चा करते हुए समाचार-पत्र के निजी प्रतिनिधि ने उनके नाम के साथ अज्ञानतावश 'दिगम्बर जैन मुनि' शब्द का प्रयोग किया है जो कि उचित नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उसमें यह भी लिखा है कि यह समस्त जानकारी मैंने [डॉ० हुकमचंद भारिल्ल, संपादक-आत्मधर्म] दी है। जबकि मैंने किसी को भी इसप्रकार की जानकारी नहीं दी कि जिसमें पूज्यश्री कानजीस्वामी को 'दिगम्बर जैन मुनि' कहा गया हो। नई दुनियाँ के कोई भी प्रतिनिधि न तो मेरे से कभी मिले हैं और न ही उनसे किसी प्रकार की चर्चा ही हुई है। यह समाचार १३ जनवरी के अंक में प्रकाशित हुआ है, जबकि मैं २४ दिसम्बर से ही यहाँ नहीं था व वापिस यहाँ पर नैरोबी (अफ्रीका) से दिनांक २५ जनवरी को आया।

जब मैं नैरोबी से लौटकर वापस आया और जैसे ही मुझे इस समाचार का पता चला; मैंने तत्काल इसका प्रतिवाद नई दुनियाँ के लिये प्रकाशनार्थ भेजा तथा डॉ० ताराचंदजी बख्शी, संचालक, महावीर समाचार समिति, जयपुर को भी सब बात स्पष्ट कर दी और उन्होंने तत्काल सभी जैन समाचार पत्रों को यह स्पष्टीकरण प्रकाशनार्थ भेज दिया।

समाज किसी भी प्रकार के भ्रम में न रहे और कलहप्रिय लोगों के बहकावे में न आये, इसलिये यहाँ और स्पष्टीकरण किया जा रहा है कि **कानजीस्वामी दिगम्बर जैन मुनि नहीं हैं, वे एक अविरत सम्यग्दृष्टि, आत्मानुभवी, सामान्य श्रावक ही हैं।** यह बात न केवल मैं ही मानता हूँ वरन् स्वयं कानजीस्वामी भी यह मानते हैं व कहते भी हैं। जैसा कि जुलाई १९७६ के आत्मधर्म के अंक में प्रकाशित मेरे द्वारा उनसे लिये गये इंटरव्यू में निम्नलिखित अंश से स्पष्ट है—

"**प्रश्न**—आपको लोग गुरुदेव कहते हैं। क्या आप साधु हैं? गुरु तो साधु को कहते हैं।

उत्तर—साधु तो नग्न दिगम्बर छठवे-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते भावलिंगी वीतरागी संत ही होते हैं। **हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं। हम तो साधुओं के दासानुदास हैं।** आहा! वीतरागी संत कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्र आदि मुनिवरों के स्मरण मात्र से हमारा रोमांच हो जाता है।"

उनके द्वारा नैरोबी में हुई धर्मप्रभावना के प्रामाणिक समाचार आत्मधर्म और जैनपथप्रदर्शक के अंकों में प्रकाशित होते रहे हैं। इस अंक में भी विस्तृत समाचार दिये गये हैं। जिज्ञासु बंधु वहाँ देखकर अपनी जिज्ञासा शांत करें और उक्त समाचार को ही प्रामाणिक समाचार मानें।

—संपादक

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४